लोक सुखी परलोक सुहेले

<u>लेखक</u>

परम सन्त कैप्टन लालचंद जी महाराज

<u>प्रकाशिका</u>

आचार्या डॉ. कमला देवी   श्रीमती शीला देशवाल

पता :-
श्री जय मल सिंह एडवोकेट
कोठी नं. 332, सैक्टर 15-ए
हिसार-125001 (हरियाणा)
फोन नं. : 01662-244725
मो. : 94164-75568

सर्वाधिकार सुरक्षित (जून, 2009)

इस पुस्तक का कोई भी अंश किसी माध्यम से प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना प्रकाशित करना अविधिमान्य होगा।

मूल्य : 15.00

अनुक्रमणिका

क्र.	शीर्षक	पृष्ठ सं.
1.	मंगलाचरण	4
2.	वन्दना	5
3.	प्राक्कथन	6
4.	भूमिका	9
5.	गुरु कौन?	12
6.	गुरु–शिष्य सम्बन्ध	18
7.	नाम क्या है?	21
8.	नाम का अधिकारी कौन?	27
9.	मनुष्य जीवन के विशेष विचार भाव	34
10.	विशेष ऋषि और उनका ज्ञान	47
11.	सत्संग कराने का अधिकारी कौन?	51
12.	सतगुरु क्या करता है?	59
13.	लोक–परलोक सुख	67

मंगलाचरण

मंगलम् गुरुदेव मूरति, मंगलम् पद पंकजम्।
मंगलम् अव्यक्त अनुपम्, मंगलम् भव गंजनम्।।

मंगलम् धुरपद निवासी, मंगलम् सत आसनम्।
मंगलम् निर्वाण सद्गति, मंगलम् जन रंजनम्।।

मंगलम् ज्ञान स्वरूपम्, मंगलम् आनन्द रूप।
मंगलम् चैतन्य सदनम्, मंगलम् सत सत्यभूप।।

मंगलम् योगेन्द्र मायातीत, मंगलम् सत दायकम्।
मंगलम् संसार सारम्, अद्भुतम् मुनि नायकम्।।

मंगलम् त्रयगुण रहित, अपरोक्ष परोक्ष निवासनम्।
मंगलम् त्रयकाल ज्ञाता, मंगलम् भव नाशनम्।।

आदि कारण मूल कारण, मध्य आदि अनन्त जो।
मंगलमृ करुणा सदन, शुभ तत्व परम जगत प्रभो।।

आप प्रकटे इस जगत में, जीव काज सुधारने।
शबद नाव बनाय सुन्दर, जीव दुखित उबारने।।

प्राण तन-मन कर्म वाणी, सब हैं अर्पण लीजिए।
मैं हूँ शरणागत तुम्हारा, दास अपना कीजिए।।

फकीर दयाला, फकीर दयाला, फकीर दयाला जय सदा।
त्याग जग के मोह धन्धे, पाऊं भक्ति सम्पदा।।

वन्दना

नमो सतगुरु सच्चिदानन्द रूपम्।
नमो अद्भुतम् अद्वितीयम् अनुपम्।।

नहीं रूप कोई है सब रूप तेरे।
तेरी सब ही प्रजा और भूप तेरे।।

धरा सन्त अवतार जग को चेताया।
दुखी दीन को अंग अपने लगाया।।

दिया संग सत का मिला सत का जीवन।
तेरे नाम पर सीस तन मन है अर्पण।।

झुके फकीर दयाला चरण हंसते-हंसते।
तुझे कहते हैं सब नमस्ते नमस्ते।।

प्राक्कथन

यह संसार दुखों का घर है। यहां कोई शरीर से दुखी है, कोई मन से दुखी है तो कोई धन से दुखी है। इन दुखों से तंग आकर मनुष्य मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा व गुरुओं का सहारा लेता है लेकिन उसे शान्ति कहीं नहीं मिलती है क्योंकि धर्म में भी आजकल पाखण्ड का जाल है। कहीं पर कोई सच्चाई नजर नहीं आती है। परन्तु हमारा यह भारतवर्ष तपोमय देश है। आज चारों तरफ भ्रष्टाचार, लूट–खसोट, धार्मिक मतभेद व पाखण्ड का जाल होने पर भी सच्चाई के दीपक की लौ कहीं न कहीं किसी न किसी महापुरुष में प्रज्जवलित है। बस जरुरत है तो उसे तलाशने की जैसे कहा है –

'सतगुरु चीन्हों री जग में, दुर्लभ रत्न यही'

बड़े भाग्य से कोई ऐसा महापुरुष मिलता है जिसके अन्तर में यह ज्ञान रूपी दीपक की लौ जलती है और जो अपने इस ज्ञान के दीपक से दूसरों के अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट कर उन्हें रोशन कर देता है। ऐसे ही ज्ञान के पुंज, शान्ति के भण्डार परम श्रद्धेय, मालिक स्वरूप हजूर महाराज कैप्टन लालचन्द जी से मेरा साक्षात्कार हुआ जिनकी संगत व ज्ञान से मेरे धर्म–सम्बन्धी सभी सन्देह व शंकाओं के बादल छंट गए और इनके प्रति अथाह प्रेम व विश्वास से मुझे अपने में उस राम–नाम की अनुभूति हुई जिसकी मुझे वर्षों से तलाश थी।

प्रस्तुत पुस्तक 'लोक सुखी परलोक सुहेले' सम्पूर्ण शास्त्रों का निचोड़ है व ज्ञान का अथाह सागर है जिसमें बहुमूल्य हीरे, जवाहरात भरे पड़े हैं। यह पुस्तक लोक व परलोक के सुख रूपी खजाने को खोलने वाली चाबी है। अगर किसी को इस चाबी से यह सुख रूपी खजाने का ताला खोलना आ जाए तो वह इस संसार में

सुखमय जीवन जीता हुआ निर्भय व निश्चिंत हो जाता है। इस पुस्तक में इस लोक को सुन्दर बताते हुए परलोक के सुख को प्राप्त करने के सुनहरी नियम बताए गए हैं। लेकिन देखने में यह आता है कि लोग इस लोक के नियमों का पालन नहीं करते और सीधा परलोक का सुख पाना चाहते हैं तो कि सम्भव नहीं है क्योंकि –

'जाको दर्शन इत है ताको दर्शन उत।
जाको दर्शन इत नहीं ताको इत न उत।।'

अत: जब तक मनुष्य का यह लोक ठीक नहीं है वह परलोक नहीं जा सकता। जैसे जब तक बच्चा स्कूल की पढ़ाई नहीं करता उसे कॉलेज में प्रवेश नहीं मिलता है, क्योंकि जब तक जीवन में किसी न किसी चीज का अभाव रहेगा या मन में कोई खटपट रहेगी तो उसकी सुरत ऊपर नहीं जा सकेगी। मुझे जब तक नौकरी नहीं मिली,, तब तक मेरी यही इच्छा रही कि मेरी पढ़ाई समाप्त हो और मुझे अच्छी नौकरी मिले और मैं महापुरुषों से इन्हीं के लिए आशीर्वाद लेती थी और जब मैं पढ़ाई व नौकरी से सन्तुष्ट हुई तो बचपन के संस्कारवश इस राम नाम को जानने की जिज्ञासा तीव्र हुई और इस इच्छा के फलस्वरूप अनेक महापुरुषों के पास जाते-जाते मैं ज्ञान की जीती-जागती मूर्ति स्वरूप अपने पूज्य गुरु के चरणों में पहुंच गई, जिनकी अपार कृपा से मुझे वह बहुमूल्य रत्न मिला, जिसने मेरे जीवन को रोशन कर अज्ञान के तिमिर को दूर कर दिया। योगियों व साधकों के लिए यह पुस्तक अत्यंत बहुमूल्य व उपयोगी है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन के लिए सबसे पहले मैं अपनी माताश्री को नमन करती हूँ, जिन्होंने पुस्तक लिखने के समय मेरे भोजन व चाय-पानी की व्यवस्था की। वैसे भी मेरी पूज्या माताश्री की प्रारम्भ से ही यह इच्छा थी कि उनकी सन्तान में से कोई एक इस अध्यात्म के रास्ते में अग्रसर हो, उस मंजिल को प्राप्त करें। यह शायद उन्हीं के

आशीर्वाद का फल है जो मैं आज यहां तक पहुंची है। भ्राताश्री एडवोकेट जयमल सिंह जी का स्नेहमयी सहयोग तो हमेशा बना ही रहता है।

पुस्तक को प्रकाशित करवाने के लिए अपना आर्थिक सहयोग देने वाले वत्स मेजर देवेन्द्र जी का धन्यवाद करने के लिए तो मेरे पास पर्याप्त शब्द ही नहीं है, जिन्होंने शारीरिक स्वास्थ्य व आर्थिक स्थिति ठीक न होने पर भी अपना अपूर्व योगदान दिया है। मेरी ईश्वर से यही दुआ है कि वह उन्हें अच्छा स्वास्थ्य बख्शे। इसके साथ ही पुस्तक प्रकाशन में अपना आर्थिक योगदान देने वाले श्री रूपचन्द जी हैदराबाद वाले भी अति धन्यवाद के पात्र हैं।

डॉ. कमला देवी

प्राध्यापिका

(एम.एम. कॉलेज) फतेहाबाद

फोन: 01667-225520, मो.: 9416475568

भूमिका

यह संसार एक नाटकशाला है। यहां हर जीव अपना-अपना कर्म भोगने को मजबूर है। अब मुझे ही देखिए। राजस्थान के एक पिछड़े इलाके का रहने वाला, धर्म-कर्म के संस्कार से रहित सेना में एक सूबेदार से इस धर्म के संस्कार को लिया और मन में जिज्ञासा हुई कि इस धर्म-कर्म को जानूं और यही संस्कार मुझे जल्दी ही होशियारपुर में पण्डित फकीरचन्द जी महाराज के पास ले गया जिनकी सच्ची बात सुनकर मुझे उन पर विश्वास हुआ और मैं उन्हीं को मालिक का स्वरूप मानकर वहां उनके सामने जब वह सहज समाधि में थे, बैठ गया और उसी दिन ही मुझे उनकी कृपा से सतनाम की प्राप्ति हो गई जिसके लिए ऋषि-मुनि न जाने कितना-कितना तप करते हैं और कष्ट उठाते हैं -

कोटि-कोटि मुनि जतन कराहिं।
फिर भी अन्त राम नहीं आहिं।।

अब मेरी इस स्थिति को जानकर लोग कहते हैं कि यह आपकी पिछली कमाई का फल है। मुझे पिछले जनम का तो कुछ पता नहीं लेकिन इतना जरूर है कि मैं जब गुरुजी के पास गया तब मेरा यह लोक बना हुआ था और मुझे केवल भजन जानने की सच्ची चाह व लगन थी। दूसरा, मेरे गुरु महाराज पूर्ण अनुभवी महापुरुष थे और सहज समाधि में रहते थे। इसलिए मेरी चाह के अनुसार उनकी रेडियेशन से मेरा काम पहले दिन ही बन गया और तब से लेकर आज दिन तक मैं जीवन के सब काम करता हुआ, सहज समाधि में रहता हुआ जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।

जहां तक पुस्तकें लिखने का सवाल है, मैं पुस्तक लिखना ही नहीं चाहता था, क्योंकि पुस्तक लिखने के लिए मन के मण्डल पर

आना पड़ता है और मेरी स्थिति मन के मण्डल से ऊपर की है। लेकिन जब से यह डॉ. कमला मेरे सम्पर्क में आई तो इसके बार-बार आग्रह करने पर मैं यह पुस्तकें लिखने को मजबूर हो गया। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि मेरे गुरु महाराज जी ने बहुत सी पुस्तकें लिखी जिनमें उन्होंने सच्चाई लिखकर धर्म के रहस्य का पर्दाफाश किया कि बाहर से कोई गुरु या देवी-देवता किसी की सहायता करने नहीं आता है। इन्सान की मदद के लिए जो भी गुरु-पीर या देवी-देवता आता है, वह उसी के मन की शक्ति है, क्योंकि उनका रूप जगह-जगह सत्संगियों में प्रकट होकर उनका काम करता था और उन्हें उसका कोई ज्ञान नहीं होता था और अब यही घटनाएं मेरे साथ घट रही है। मैं तो किसी को नाम भी नहीं देता फिर भी प्रेमी व विश्वासी सज्जनों में मेरा रूप जगह-जगह प्रकट होकर उनके तरह-तरह के काम कर देता है और मुझे इसकी कोई जानकारी नहीं होती है और इसी सच्चाई को बताने के लिए मैंने ये पुस्तकें लिखी हैं क्योंकि मेरे गुरुजी की यह हार्दिक इच्छा थी कि उनके द्वारा दी गई सच्चाई की शिक्षा जगह-जगह फैले लेकिन उनकी पुस्तकों का दोबारा प्रकाशन नहीं हुआ और न ही डॉ. कमला को इन्हें प्रकाशित करवाने की आश्रम वालों ने अनुमति दी। शायद इसीलिए कुदरत ने डॉ. कमला को जो विद्वान व साध्वी हैं, मेरे पास ये पुस्तकें लिखने के लिए भेजा। मैं इन पुस्तकों को जिनमें वही सच्चाई लिखी हुई है और जिन्हें पढ़कर मनुष्य के धर्म-सम्बन्धी सब भ्रम दूर हो सकते हैं, दूर-दूर तक फैलाने के लिए इस 86 साल की आयु में भी यह काम कर रहा हूँ और यह चाहता हूँ कि मेरे इस सत्संग के प्रचार के लिए डॉ. कमला के साथ अच्छे विद्वान व बुद्धिमान लोग इस ज्ञान को समझकर इसके साथ जुडें व इस काम में अपना सहयोग दें क्योंकि जो ज्ञान बांटेंगा उसी को ज्ञान मिलेगा।

मेरी इस पुस्तक 'लोक सुखी परलोक सुहेले' में मैंने अध्यात्म के सार को बताने की कोशिश की है कि मनुष्य इस लोक को विचारों

से सुन्दर बनाते हुए, सुखी जीवन बिताते हुए कैसे उस स्थायी शान्ति वाले लोक को प्राप्त कर सकता है। मैंने ये सब पुस्तकें अपने अनुभव के आधार पर लिखी है क्योंकि मैंने कोई शास्त्र नहीं पढ़े हैं। अगर मेरी इन पुस्तकों से किसी का जीवन सुधरता है और किसी को शान्ति मिलती है तो मैं अपने आपको सौभाग्यशाली समझूंगा।

कैप्टन लाल चन्द

गांव पोस्ट, दांदू

जिला चुरू (राजस्थान) पिन : 331001

फोन: 01562-283121

गुरु कौन?

आत्मा–परमात्मा के विषय को समझना, अनुभव करके ज्ञान प्राप्त करना ही अध्यात्म है। मनुष्य की आदि काल से ही इस विषय में रूचि रही है। हमारे देश में अध्यात्म ज्ञान के खोजी ऋषि, मुनि, अवतार, नाथ आदि बहुत से नामों से बोले जाते हैं। अब इस समय में वह सन्त के नाम से विशेष प्रसिद्ध है। सांसारिक शिक्षा के लिए जैसे अध्यापक या शिक्षक की आवश्यकता है वैसे ही इस अध्यात्म विषय के लिए सतगुरु की आवश्यकता है।

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देव महेश्वरः।
गुरुसाक्षात् पर ब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नमः।।

ध्यान मूलं गुरुमूर्ति, पूजा मूलं गुरु पदम्।
मन्त्र मूलं गुरोर्वाक्यम्, मोक्ष मूलं गुरु कृपा।।

शब्द

साधो गुरु का रूप लखाऊं।
जो कोई आए मेरी सभा में, गुरु का रूप लखाऊं।।

सत रज तम की हद से बाहर, गुरु मूर्ति दरसाऊं।
निर्गुण सगुण देह नहीं जाके, अद्‌भुत भेद बताऊं।।

हाड मांस नाड़ी नहीं जाके, वाके रूप ननाऊं।
सबका सबमें सबसे न्यारा, मरम विचित्र जताऊं।।

रूप अरूप स्वरूप अनूपा, निराकार ठहराऊं।
फकीर दयाल चरण शरण बलिहारी, पल-पल गुरु गुण गाऊं।।

अध्यात्म ज्ञान में लोगों को गुरु के विषय में बहुत बड़ा भ्रम है। लोग गुरु मत में आकर रात दिन गुरु-गुरु करते हैं किन्तु यह नहीं समझते कि गुरु क्या है और उन्होंने किस उद्देश्य से गुरु धारण किया है? गुरु नाम है ज्ञान का। शरीर, मन, आत्मा और सुरत तत्व से बने इस मनुष्य शरीर में यह सुरत तत्व ही वास्तव में परमात्मा का एक छोटा सा अंश है जो मनुष्य में मुख्य खेल या लीला करता रहता है। इन चारों तत्वों का अलग-अलग किसी पूर्ण अनुभवी महापुरुष से समझकर योग साधन से अनुभव ज्ञान करना ही सच्चा ज्ञान है। इस का ही नाम गुरु है। किसी मनुष्य का नाम गुरु नहीं है। मैं गुरु नहीं हूँ। जो खुद अनुभव करके बता रहा हूँ वह अनुभव गुरु है। बाहर के गुरु की बहुत आवश्यकता है। मार्गदर्शन बाहर का जीवित महापुरुष ही करेगा।

धन्य-धन्य गुरु परम स्नेही, धन्य दीन हितकारी।
धन्य कृपाला सहज दयाला, भव भय मेटनहारी।।

लीला अगम अपार अमाया, अद्‌भुत क्या कोई जाने।
ऋषि मुनि योगी पार न पावे, ज्ञानी नहीं पहचाने।।

अगुण सगुण के मध्य विराजे, ब्रह्म नहीं माया।
रूप अरुप के वरे परे तुम, नहीं प्रकाश नहीं छाया।।

सब में व्याप्त तुम्हारी सत्ता, सत असत के पारा।
मन वाणी की गम नहीं तुम में, सब में सबसे न्यारा।।
क्या कह करुं तुम्हारी स्तुति, अजर अमर अविनाशी।
निरालम्ब सब के आधारा, चेतन धन सुख रासी।।

गो गोचर जहां लग मन जाही, सो नहीं देश तुम्हारा।
माया काल के परे ठिकाना, क्या कोई बरने पारा।।

तत्व अतत्व असार सार नहीं, शब्द सुरत नहीं होई।
सन्त कहें तुम शब्द रूप हो, और अशब्द गति सोई।।

ऊंची दृष्टि करे जो प्राणी, सार भेद कुछ पावे।
भेद पाय शरणागत आवे, आवागमन मिटावे।।

दया करो करुणा चित लाओ, दो मोहि भक्ति विवेका।
राधास्वामी चरण शरण बलिहारी, रहूं शब्द मिल एका।।

यह गुरु महिमा का शब्द है। अब प्रश्न यह है कि यह गुरु कौन है जिसके विषय में यह लिखा गया है। इसका उत्तर यही है कि यह गुरु ज्ञान है जिसकी महिमा अपरम्पार है। किसी मनुष्य गुरु की तो हम महिमा गा सकते हैं, परन्तु ज्ञान की महिमा नहीं गा सकते हैं। गुरु महिमा का एक और शब्द नीचे पढ़ें –

‘गुरु महिमा अपरम्पार आधार’

गुरु महिमा अगम अपार, गुरु गति कौन कहे री।
बिन गुरु कर्म न धर्म कुछ, बिन गुरु भक्ति न ज्ञान।।

जन्म जन्म जम फांस है, बिन गुरु नहीं निर्वाण।
जिन चरन गुरु सिर धार, गुरु मति सोई लहे री।।

देवी देवा ऋषि मुनि, सुर नर साध सुजान।
हंस बंस अवतार सब, गुरु महिमा को जान।।

गुरु है सत करतार, गुरु बिन कौन कहे री।
राम कृष्ण के गुरु हैं, गुरु मत गुरु वशिष्ट।।

सन्त कबीर ने गुरु किया, गुरु हैं सबके इष्ट।
बिन गुरु भव जल धार, निगुरे सकल बही री।।

दुख क्लेश आपत्ति चहुं, दिस जग में व्याप।
जीव छुड़ावन सद्‌गुरु प्रकटे, आप ही आप।।

सबका किया उद्धार जो, कोई शरण गहे री।
फकीर दयाल आदि गुरु, परम दयाल प्रवीन।।

अभय करे पद भक्ति दे, तारे जीवन आधीन।
नहीं उसका वार पार, जो गुरु भक्ति लहे री।।

मैंने अपने अनुभव के आधार पर यह समझा है कि गुरु नाम ज्ञान व विवेक का है। इस दुनिया में जिसका भी जीवन बनता है, वह बिना समझ, विवेक, बुद्धि तथा अनुभव के नहीं बनता है। विवेक तथा परखने की शक्ति या तत्व हरेक में विद्यमान रहता है। छोटे-छोटे कीड़े, मकोड़े, मछलियां, पशु-पक्षी सभी सोचते हैं। सभी में बुद्धि का तत्व मौजूद हैं।

क्या कोई यह बता सकता है कि जो बुद्धि तत्व, ज्ञान तत्व अथवा अनुभव तत्व है, उसके रूप चाहे अलग-अलग क्यों न हों, वह कितना अगम, अपार है? क्या किसी में यह शक्ति है कि वह शरीर में रहते हुए अपने विवेक या परखने की शक्ति के बारे में कुछ बता सके कि वह क्या है? इसी प्रकार आत्मा में रहते हुए जो विवेक होता है और ध्यान योग में शब्द को सुनते हुए जो विवेक अनुभव होता है क्या उसका वर्णन किया जा सकता है? तो फिर खुद ही सोचो कि गुरु की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है? क्योंकि गुरु नाम ज्ञान का है और ज्ञान की महिमा कौन कर सकता है? हम केवल बाहर के शरीरधारी गुरु की ही महिमा कर सकते हैं जो अधिकारी को सत्संग देकर मार्गदर्शन करता है। जैसे कहा है -

'घर में घर दिखलाये दे, सो सतगुरु पुरुष सुजान।'

अत: मनुष्य को बाहर का पूर्ण अनुभवी गुरु ही मार्गदर्शन कर सकता है। वह जीव को बाहर न भटका कर उसे अन्तरमुखी कर देता है। जैसा इस शब्द में कहा है -

जो तुम पिया से मिलना चाहो, तो भटको मत मग में।
तीर्थ व्रत कर्म आचारा, यह अटकावे मग में।।

जब लग सन्त गुरु मिले न पूरे, पड़े रहोगे अध में।
नाम सुधा रस कभी न पावो, भरमों योनी खग में।।

पण्डित ज्ञानी काजी भेष शेख सब, अटक रहे डग-डग में।
इनके संग पिया नहीं मिलना, पिया मिले कोई साधु संग में।।

यह तो भूले विषय वास में, भरम बसे इनके रग-रग में।
बिना सन्त कोई भेद न पावे, वो तोहें कहें अलग में।।

जब लग सनत मिले नहीं तुम को, खाय ठगोरी तुम इन ठग में।
सतगुरु सन्त शरण गहो तो, रलो ज्योति जगमग में।।

यह शब्द आत्म अनुभव का है जो प्रकाश तक के अनुभव में रहते हैं। सन्त मत का अनुभव आत्म पद से आगे शब्द का है जिसे सुरत शब्द योग कहा है जिसमें सुरत अन्त में शब्द में मिल जाती है।

शब्द प्रकट तब धरिया नाम, शब्द गुप्त तब हुआ अनाम।।

गुरु-शिष्य सम्बन्ध

यह अध्यात्म ज्ञान गुरु शिष्य से आरम्भ होता है। गुरु नाम ज्ञान का है और जो ज्ञान लेता है उसका नाम शिष्य है। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध इस प्रकार का है जैसे पानी और मिश्री का। मिश्री पानी में पड़कर घुल मिलकर उस पानी जैसे रूप वाली हो जाती है। इसी प्रकार सेवक स्वामी के साथ मिलकर उसके भाव व विचार को अपने अन्दर स्थान देकर उस स्वामी के शील स्वभाव वाला बन जाता है।

स्वामी सेवक होय के, मन ही में मिली जाय।
चतुराई रीझै नहीं, रहिए मन के माय।।

गुरु व शिष्य में महत्वपूर्ण आवश्यकता है परस्परता की। यदि दोनों में से किसी भी एक में स्वार्थ का भाव आ जाता है तो किसी का भी भला नहीं हो सकता है। अध्यात्म में गुरु व शिष्य को बहुत महत्व दिया गया है। दोनों ही समाज के लिए प्रेरणा के प्रतिबिम्ब होते हैं। कबीर साहब, राधास्वामी दयाल व लगभग सभी महात्माओं ने गुरु-शिष्य को मार्गदर्शन किया है। जैसे -

शिष्य पूजै गुरु आपना, गुरु पूजे सब साध।
कहैं कबीर गुरु शीष को, मत है अगम अगाध।।

शिष्य को ऐसा चाहिए, गुरु को सर्वस देय।
गुरु को ऐसा चाहिए, शिष्य का कछु न लेय।।

गुरु चेला व्यवहार जगत में, झूठा बरत रहा।
का से कहूं समझ ना ही काहू, धोखे धार बहा।।

गुरु तो मान प्रतिष्ठा चाहे, चेला स्वार्थ संग बंधा।
सच्चा मार्ग सुरत शब्द का, सो अब गुप्त बहा।।
गुरु भी दुर्लभ चेला भी दुर्लभ, कहीं जोग से मेल भया।।

सतगुरु तो सतभाव है, जो अस भेद बताय।
धन्य शीष धन भाग तिहिं, जो ऐसी सुधि पाय।।

गु अंधियारी जानिए, रू कहिए प्रकाश।
मिटे अज्ञान तम ज्ञान ते, गुरु नाम है तास।।

गुरु नाम है गम्य का, शीष सीख ले सोय।
बिनु पद बिनु मरजाद नर, गुरु शीष नहीं कोय।।

गुरु मिला तब जानिये, मिटै मोह तन ताप।
हरष शोक व्यापे नहीं, तब गुरु आपे आप।।

इस तरह के बहुत से शब्द महापुरुषों ने गुरु चेले के मार्गदर्शन के विषय में कहे हैं। कबीर साहब ने अपनी वाणी में जीवन के सभी अंगों पर प्रकाश डाला है। इसी प्रकार सभी आध्यात्मिक महापुरुषों ने अपने-अपने अनुभव, संस्कारों व समझ के अनुसार मनुष्य को इस लोक और परलोक के जीवन को सुखी जीने के विषय में मार्गदर्शन

किया है। केवल शैली और भाषा की भिन्नता है। मेरी समझ व अनुभव के अनुसार जिसने जो अनुभव किया, वही बताया है।

अब समय बदल गया है। यह विज्ञान का युग है। आज का मनुष्य बुद्धिमान् और समझदार है। वह हर बात का प्रमाण चाहता है। अन्धविश्वास से कोई बात स्वीकार नहीं करता है। इसलिए धर्म कर्म के अनुभव ज्ञान के लिए विधि और वर्णन शैली भी समय के अनुसार बदलनी जरूरी है। सनातन धर्म व अन्य सभी महापुरुषों ने अपनी-अपनी वर्णन शैली व भाषा में इस बात की चर्चा की है कि समय के साथ धर्म की विधि बदलती रहती है। जैसे -

ध्यान प्रथम युग, मख युग दूजे।
द्वापर परतोषित प्रभु पूजे।।
कलि केवल एक नाम आधारा।
श्रुति स्मृति (वेद मत) सन्त मत सारा।।

अर्थात् सतयुग में परमात्मा की प्राप्ति केवल ध्यान से होती थी। त्रेता में यज्ञ से और द्वापर में मूर्ति पूजा से तथा कलयुग में केवल नाम से होगी। कहने का भाव यह है कि यह संसार परिवर्तनशील है परन्तु इस परिवर्तनशील संसार में न तो परमात्मा बदलता है न यह सुरत जो अंश रूप में मनुष्य में खेल या लीला कर रही है, यह बदलती है। समय के साथ विधि-विधान बदलते रहते हैं। आज के विद्वान या बुद्धिमान मनुष्य के लिए विधि है, केवल नाम के साधन की। जैसे ऊपर कहा है - *'कलि केवल एक नाम आधारा'।*

अब प्रश्न यह उठता है कि यह नाम क्या हैं ?

नाम क्या है?

नाम की बहुत महिमा है। सारी दुनिया इस नाम के पीछे पड़ी है लेकिन इसके स्वरूप को कोई नहीं जानता कि वह क्या है? लोग सोचते हैं कि गुरु नाम दे दे तो उनके संकट दूर हो जाएंगे। इस विषय में अधिकतर मनुष्य भ्रम में हैं। जैसे कबीर साहब ने एक शब्द में लिखा है –

सन्तो देखो जग बौराना।
नेमी देखी धर्मी देखे, करें प्रातः अस्नाना।
बहुत ही देखे पीर औलिया, पढ़ते वेद पुराना।।

घर–घर मन्त्र देत फिरत है, महिमा के अभिमाना।
गुरु समेत शिष्य सब डूबे, अन्त काल पछिताना।।

हिन्दू कहे मोहे राम प्यारा, तुरक कहे रहमाना।
आपस में वो लड़ लड़ मुए, मरम न काहू जाना।।

कहे कबीर सुनो भाई साधो, यह जग भरम भुलाना।
केतक कहूं कहा नहीं माने, आप ही आप बंधाना।।

कबीर साहब ने इस शब्द में उन महापुरुषों की ओर संकेत किया है जिन्होंने आज मंदिरों, तीर्थ–स्थानों, आश्रमों और डेरों में बहुत भीड़ एकत्रित कर रखी है। वस्तुतः इन पूज्य गुरु सज्जनों को स्वयं नाम का पता नहीं है तो शिष्यों को कहां से होगा। अतः ये दोनों ही अज्ञानी है व भटक रहे हैं।

वस्तु कहीं ढूंढे कहीं, केही विधि आवे हाथ।
कहे कबीर तब पाइये,, जब भेदी लीन्हा साथ।।

तो वह नाम क्या है? मन और आत्मा की चेतनता से परे जो अवस्था है उसका नाम है नाम। मन के आनन्द में नाम नहीं है। जब तक मन के अन्दर से विभिन्न रूप, नजारे, गुरु या कोई अन्य देवी-देवता प्रकट होते रहते हैं और सुरत मन के साथ लगी रहती है तब तक नाम का अनुभव नहीं कहा जा सकता। क्योंकि वह रूप उनकी अपनी आत्मा है। ये सब रूप रंग मन से निकलते हैं। इसलिए रूप के जगत से परे जो अवस्था है वह नाम है। जैसे -

नाम रहे चौथे पद माहीं, ये ढूंढे त्रिलोकी माहीं।।

यह नाम सतगुरु के आधीन है जो जीव की प्रकृति देखकर, सत्संग कराकर उसे सच्ची समझ व विवेक देकर उसके भ्रम को दूर कर देता है। आज जो नाम की विधि या युक्ति बताई जा रही है लोग उसी को नाम समझकर जिह्वा से रटते रहते हैं और भेद को नहीं समझते हैं। वह नाम वास्तव में हर मनुष्य के अन्तर में है, उसे पाने के लिए उसे कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है। जैसे हिन्दुओं के गायत्री मन्त्र में सावित्री रूपी सूर्य के दर्शन की प्रेरणा दी गई है। अब लोग गायत्री मन्त्र को जिह्वा से रटने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करते। वास्तव में सच्चाई यह है कि वह सावित्री (सूर्य) हर जीव के अन्तर में स्थित है। अत: जब तक किसी की सुरत अपने अन्तर में मन के विकारों को छोड़कर प्रकाश में नहीं जायेगी या सावित्री के दर्शन नहीं करेगी तो उसे कुछ लाभ न होगा।

लोग गुरुओं से नाम दीक्षा ले लेते हैं, परन्तु उनके वचन पर उनका विश्वास नहीं रहता। वह तो यही समझते हैं कि गुरु फूंक मार देता है जबकि गुरु की दया यही है कि वह बुद्धि को निश्चयात्मक बना देता है। स्वामी जी ने लिखा है कि -

सब ही आये सतगुरु आगे,
दरस न पकड़ा वचन न लागे।
कहो अस सत्संग से क्या फल पाया,
समय गया और जन्म गंवाया।।

अतः नाम है गुरु वचन। 'मन्त्र मूलम् गुरु वाक्यम्'। जैसा निम्न शब्द में बताया है –

भरोसा तेरा है तेरी आस मन में,
लगा रहता हूँ तेरे सुमिरन भजन में।
यही है जतन और यही काम मेरा,
जपा करता हूँ रात दिन नाम तेरा।।

तेरी मौज में रह के निस दिन सुखी हूँ,
नहीं भय न चिन्ता न जग से दुखी हूँ।
खुली आँख से तेरा दर्शन जो पाया,
मिटा सहज में मान मद लोभ माया।।

न जोगी न साधु न ज्ञानी बना मैं,
न भोगी असाधु न ध्यानी बना मैं।
जो था पहले अब भी वही रूप मेरा,
न व्यापा मुझे काल का हेरा-फेरा।।

न जागा न सोया न सुषुप्ति में आया,
न आसा निरासा के भय ने सताया।
न दौड़ा न बैठा न लेटा कभी मैं,
न माता-पिता और बेटा कभी मैं।।

न ब्रह्म माया का है द्वन्द्व मुझको,
न उलझा सका कर्म का फन्द मुझको।
सहज रूप है और सहज कर्म वाणी,
सहज में सहज की सहज ही निशानी।।

सहस्र दल अनेक और त्रिकुटी की त्रिपुटी,
दशा द्वैत की सुन्न में भी न प्रकटी।
महासुन्न अद्वैत का भाव छूटा,
भंवर में नहीं काल माया ने लूटा।।

अलख हूँ अगम हूँ अनामी बना हूँ,
कहूँ कैसे कैसा कहां और क्या हूँ।।
गुरु फकीर दयाल ने आकर चिताया,
मेरा रूप मुझको सहज में लखाया।।

अब सवाल यह है कि किसका भरोसा? क्या राधास्वामी गुरु जी का, व्यास वालों का या आगरे वालों का, सनातनी गुरुओं का या राम कृष्ण या देवी देवता का? यह सच्चा नाम नहीं है। यह तो आपके विश्वास की बात है। ऊपर फकीर दयाल गुरु लिखा है। यह भी विश्वास की बात है। *'पूर्ण अनुभवी महापुरुष ने आ के चिताया, मेरा रूप मुझको सहज में लखाया'*।

यह जो आपका रूप है यह है नाम। यह परमात्मा का छोटा अंश है। सन्तों ने इसका नाम समझाने बुझाने के लिये सुरत रख दिया है। इसका कोई नाम नहीं है। सब नाम इसके हैं। जब तक आपको अपने रूप का अनुभव न हो तब तक सन्त सतगुरु जिसमें आपका विश्वास हो उसके रूप को मान लो, परन्तु सच्चा नाम आपका निज रूप है। जब शब्द योग करते-करते अपने निज रूप का अनुभव हो

जाएगा, उसके बाद कुछ नहीं करना, केवल शरणागत होना है।

मैंने अपनी समझ के अनुसार आपको यह सच्चाई बताने का यत्न किया है, परन्तु इस अपने निज रूप को समझने के लिए आपको कई श्रेणियों में यानी अपने घट में कई (Stages) अवस्थाओं पर सहज ही किसी पूर्ण अनुभवी महापुरुष की सलाह या राय से साधन करके खुद अनुभव करना होगा। यह लोक जिसमें हम जी रहे हैं यह संकल्प का है यानी विचारों का हैं। इस लोक में सुख-शान्ति, खुशी, उमंग, प्रेम प्यार से जीवन जीने के नियम और हैं तथा यहां अच्छा जीवन जीते हुए अपने अन्दर जो अंश रूप में परमात्मा का रूप है उसका अनुभव करने के नियम या जीवन सूत्र कुछ और हैं। यह बात कोई अनुभवी पुरुष जो गृहस्थी हे, वह आपको मार्गदर्शन करेगा। कोई संन्यासी या ब्रह्मचारी किसी गृहस्थी को मार्गदर्शन नहीं कर सकता है। वह केवल किसी संन्यासी या ब्रह्मचारी को ही मार्गदर्शन कर सकता है। इसका एक उदाहरण देकर समझाता हूँ ताकि कोई पूज्य संन्यासी या ब्रह्मचारी इसे गलत न समझे और उसे कोई इस विषय में भ्रम या शंका न रहे।

महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज का एक शिष्य था जो हर रविवार को उनका सत्संग सुनने जाता था। रास्ते में एक सन्यासी या वैरागी महात्मा धूनी तपता था। जब वह सत्संगी सत्संग सुनकर वापिस आता था तब वह सन्यासी उस शिष्य से पूछता था कि आज तुम्हारे गुरु जी ने क्या सत्संग दिया? वह सत्संगी जैसा सतसंग में सुनता था वैसा उसको बता देता था।

एक दिन एक घटना घटी, जब सन्यासी ने पूछा कि तुम्हारे गुरु जी ने आज क्या सतसंग दिया? तब सत्संगी ने कहा कि महाराज, आज हमारे गुरु जी ने बताया कि कोई सन्यासी किसी गृहस्थी को नाम नहीं दे सकता है? यह सुनकर सन्यासी को क्रोध आया और कहा! जा,

उस दुकान से एक पाव नया गुड़ ले आ। वह सत्संगी जाकर दुकान से गुड ले आया। सन्यासी ने थोड़ा चखकर उस सत्संगी को कहा कि यह गुड़ खा लो। उसने खा लिया और अपने घर चला गया। उस सत्संगी के मस्तिष्क में शब्द गूंजने लगा। उसे नींद नहीं आई और वह बहुत बेचैन हुआ। उस सत्संगी के चार लड़कियां थी। वह सांसारिक इच्छा के विचार से सत्संग में जाता था। नाम प्रकट होने से वह महादुखी हो गया। यह बात पूर्ण अनुभवी महापुरुष जानता है कि नाम का अधिकारी कौन है? सन्यासी ओर ब्रह्मचारी गृहस्थी के दुख-तकलीफ को क्या जाने?

जाके पैर न फटी बिवाई।
वह क्या जाने पीर पराई।।

यह अध्यात्म ज्ञान अनुभव का विषय है परन्तु यह अनुभव तीन तरह के हैं। एक है स्थूल यानी इस लोक का, दूसरा है सूक्ष्म यानी परलोक का और तीसरा कारण लोक का है। इस्लाम में सूफी फकीरों ने इसको दो श्रेणियों में बताया है - एक इश्के मिजाजी, दूसरा इश्के हकीकी। यानी एक परमात्मा की बनाई हुई चीजों से प्यार करना, दूसरा परमात्मा से प्यार करना। यह अपने-अपने अनुभव और संस्कार व ध्यान की एकाग्रता के अनुसार समझाने के लिए नाम रखे हुए हैं। अतः कहा है -

नाम की महिमा सन्त बखाने, नाम संग लौ लावें।
जो कोई उनसे नेह बढावे, उसका काम बनावें।।
सतगुरु पिया की प्रीत कठिन है, जाने जानन हारा।
सतगुरु महिमा क्या कोई गावे, वह है अगम अपारा।।

नाम का अधिकारी कौन?

विषयन से जो होए उदासा, परमारथ की जा मन आसा।
धन सन्तान प्रीत नहीं जाके, जगत पदार्थ चाह नहीं ताके।।

तन इन्द्री आसक्त नहीं होई, नींद भूख आलस जिन खोई।
विरह बाण जिन हृदय लागा, खोजत फिरे साध गुरु जागा।।

साध फकीर मिले जो कोई, सेवा करे करै दिल जोई।
ऐसी करनी जाकी देखें, आप आए सतगुरु तिस मिले।।

सतगुरु वचन सुने जब काना, उमंगे हृदय प्रेम समाना।
सतगुरु से जब प्रीत लगावे, दया मेहर कुछ उनकी पावे।।

कहने का भाव यह है कि नाम केवल अधिकारी के लिए हैं। जिसके मन में नाम की चाह ही नहीं उसको नाम से क्या फायदा। नाम लेने से पहले उसका दीन हीन होना अत्यंत आवश्यक है। जैसे –

दीन हीन शरण में आया, कीजे आप सहाय।
काल का भय आज मेंटो, अपने चरण लगाय।।

अब दीन कौन है? जो किसी चीज को पाना चाहता है और उसे पाने की उसमें शक्ति नहीं है तो वह दूसरे के आधीन होता है। या फिर वह इस परिवर्तनशील संसार में तरह-तरह के थपेड़ों से दुखी हो जाता है तो वह शान्ति चाहता है तो वह नाम का अधिकारी हो जाता

है। जब वह दीन-हीन होकर गुरु के पास जाता है तो वह उसकी परिस्थिति व हालात जानकर उसे सुखी व शान्त होने का रास्ता बता देता है। इस प्रकार अनुभवी महापुरुष जो उसको नाम देता है वह सबको एक ही रास्ता नहीं बताता, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के दुख, कष्ट व परिस्थितियां भिन्न-भिन्न हैं। अत: सबके लिए नाम की एक ही विधि नहीं हो सकती है।

इस संसार में मनुष्य की अशान्ति के अनेक कारण है। कोई संसार के दुखों से अशान्त हैं तो कोई घर वालों से अशान्त हैं। कोई जन्म-मरण के दुख से अशान्त है तो कोई धर्म की खोज में अशान्त हैं। ऐसी स्थिति में उसे सतगुरु द्वारा बताए गए नाम या मार्ग से शान्ति मिलती है। यदि कोई आर्थिक स्थिति से परेशान है तो वह उसे मेहनत करने का उपाय बताता है। कोई अपनी शक्ति में असमर्थ है तो उसे शरणागत की भक्ति बताई जाती है और कोई धर्म सम्बन्धी भ्रम से परेशान हैं तो उसे सच्ची समझ दी जाती है। यदि किसी का मन अधिक चंचल है तो उसे स्थिर करने के लिए उसे योग का साधन बताया जाता है। कर्म, भक्ति, योग व ज्ञान ये सब मन को सुख-शान्ति देने वाले हैं। अत: किसी जीवित गृहस्थी अनुभवी महापुरुष से सत्संग में सही समझ, विवेक, ध्यान योग से अनुभूति व ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। मनुष्य जीवन की सफलता इसी में है कि वह अपने निज रूप का अनुभव कर ले। यही मुक्ति या जीवन्मुक्ति की अवस्था है। ऐसे महापुरुष को ही परम सन्त, वक्त सतगुरु या स्थित प्रज्ञ कहा जाता है।

इस संसार में हर प्राणी अपने प्रारब्ध कर्म को लेकर आता है जिन्हें वह यहां आकर भोगता है। कोई यहां राज करने आता है तो

कोई भीख मांगने आता है। कोई यहां चोरी, ठगी करने आता है तो कोई दानी बनकर आता है। यह सब लेन-देन का चक्कर है। कोई पुत्र बनकर ठगता है, कोई डॉक्टर बनकर ठगता है, कोई वकील बनकर ठगता है तो कोई जमाई बनकर ठगता है। इसी तरह कोई सन्तान रूप में, कोई भाई रूप में, कोई मित्र रूप में या कोई अन्य किसी रूप में सुख देने आ जाता है। यहां हर मनुष्य की अपने प्रारब्ध कर्म भोगने की मजबूरी है। यह बात यदि मनुष्य सत्संग में जाकर किसी अनुभवी महापुरुष से समझ ले तो वह इस जीवन को सुखी व आनन्द के साथ व्यतीत करते हुए अपना परलोक सुधार सकता है और शान्ति का द्वार खोल सकता है। मनुष्य जीवन में ही यह लाभ उठाया जा सकता है। दूसरी योनियों में यह सत्संग का लाभ नहीं उठाया जा सकता। जैसे कहा -

गति, मति, कीरती बहुति भलाई।
जो जस जतन जहां से पाई।।
सो जानो सत्संग परभाऊ।
लोक वेद नहीं आन उपाऊ।।

रामायण की इस चौपाई में यही लिखा है कि मनुष्य के चाल-चलन, व्यवहार, चरित्र, सद्बुद्धि, यश, कीर्ति व भलाई सब सत्संग के प्रभाव का फल है। मनुष्य में सद्गुणों के विकास के लिए इस लोक व वेद शास्त्रों में अन्य कोई और उपाय नहीं है। सत्संग सज्जनों के संग का नाम है। इसलिए नाम का अधिकारी बनने के लिए सर्वप्रथम सत्संग की आवश्यकता है। मैं जो सत्संग कराता हूँ उसमें जो मेरी बात को समझ गया, उस समझ का नाम 'नाम' है। फिर उसके अनुसार वह साधन और अभ्यास करे।

जो व्यक्ति नाम का जाप करता है और अपने अन्तर, अपने इष्ट के रूप का दर्शन करता है या प्रकाश को देखता है तो उसकी इच्छा शक्ति बढ़ जाती है और उसकी जो सच्ची इच्छा होती है वह अवश्य पूरी हो जाती है। अत: जिनके मन गन्दे हैं और जिनके अन्दर ईर्ष्या, द्वेष व घृणा के भाव भरे हैं, वे यदि इन विचारों को नहीं रोक सकते हैं या रोकना नहीं चाहते हैं तो उन्हें यह योग अभ्यास नहीं करना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने पर उन्हें लाभ के स्थान पर हानि हो सकती है। इसलिए नाम अधिकारी को मिलना चाहिए। मैंने आज तक किसी को नाम नहीं दिया। बस सत्संग कराता हूँ और जीवों को जीने का रहस्य व विचारों तथा आशाओं को शुद्ध रखने का तरीका बताता हूँ। यदि कोई मेरी बात समझ जाए तो मेरा सत्संग ही नाम दान है।

मैंने सहस्राकार से लेकर सतलोक तक के ये जितने योग साधन बताए हैं इनका अनुभव न करके सीधा अलख, अगम व अनाम का साधन सहज में किया है। यानी कुछ किया नहीं सहज ही प्राकृतिक तरीके से गुरु कृपा से अपने आप अनुभव होते गए। मेरा रूप मेरे प्रति विश्वास रखने वाले सज्जनों में भयवश या प्रेमवश प्रकट होकर उनकी सहायता करता है, परन्तु मुझे इस विषय में कुछ मालूम नहीं होता है कि किस में मेरा रूप प्रकट होकर उसकी क्या सहायता करता है? विश्वासी सज्जन प्रसाद बनवाकर ले जाते हैं और उनका काम हो जाता है। किसी का काम नहीं भी होता है तो यह रहस्य क्या है? जहां तक मेरा अनुभव है वह यह है कि हर मनुष्य में परमात्मा तत्व का छोटा अंश एक किरण रूप में काम कर रहा है। जहाँ जिस रूप में उसका विश्वास है उसका ही मन वही रूप बनाकर उसकी सहायता करता है। रामकृष्ण का विश्वासी सोचता है कि रामकृष्ण उसकी सहायता को

आए हैं और इस्लाम का विश्वासी सोचता है कि मोहम्मद या कोई फरिश्ता आया है। गुरु भक्त समझते हैं कि गुरुजी ने प्रकट होकर मेरी मदद की है। जबकि सच्चाई यह है कि उसी का मन उसके इष्ट का रूप बनाकर उसकी मदद या सहायता करता है।

अब यह रहस्य न तो राम या कृष्ण, न कोई गया हुआ पीर-पैगम्बर बताने के लिए आयेगा और न यह हाजिर गुरु पीर बता रहे हैं। मेरे गुरु महाराज पंडित फकीरचंद जी ने व मैंने इस गुप्त रहस्य को खोल दिया है ताकि तुम लोग लुट न सको और अज्ञानता में अपनी गाढ़ी कमाई का पैसा इन मंदिरों, गुरुद्वारों, डेरों व आश्रमों में न दे सको। मैं जगह-जगह अपने सत्संगों में यह सच्चाई बता रहा हूँ कि बाहर से कुछ नहीं आता है। हर मनुष्य में परमात्मा अंश रूप में हाजिर है। तुम उसका विश्वास चाहे साकार रूप में रखो, चाहे निराकार रूप में रखो। आपका रक्षक हर समय आपके साथ है।

भरोसा तेरा है तेरी आस मन में।
लगा रहता हूँ तेरे सुमिरन भजन में।।

एक समय की बात है जब में नौकरी से सेवानिवृत्ति लेकर घर जा रहा था तो मैंने अपने गुरु महाराज जी के पास जाकर यह अर्ज की कि 'महाराज जी, मैंने फकीरी के ख्याल से कुछ पैसा नहीं बचाया। मैंने अभी बच्चों को पढ़ाना है व उनकी ब्याह-शादियां करनी है लेकिन मेरे पास इतना पैसा नहीं है। आप मुझ पर कुछ कृपा करें। मेरे गुरु महाराज जी उस समय हुक्का पी रहे थे व सहज समाधि में बैठे थे। मैंने उनसे यही अर्ज दो-तीन बार की, लेकिन उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। मुझे लगा कि महाराज जी काफी बुजुर्ग हो गए हैं और उन्हें मेरी बात सुनाई नहीं दी। मैंने खड़े होकर उनके कन्धे दबाने शुरु कर दिए

और जब उन्होंने हुक्के की घूंट मारी तो फिर अपनी वही बात उनके कान के पास दोहरा दी। इस पर महाराज जी बोले – लालचन्द! मुझे तुझ पर बहुत फक्र था लेकिन तुम तो कोल्हू के बैल की तरह वहीं बैठे हो। क्या तुम्हें उसका भरोसा नहीं है। और इस बात पर मुझे होश आया, क्योंकि मेरी साधन की स्थिति बहुत ऊंची थी लेकिन क्षण भर के लिए मैं उसे भूल गया था। गुरु जी ने मुझे चिताया और मैं उन्हें दण्डवत् करके घर चला आया और एक उस मालिक के भरोसे पर मेरे दुनियावी सभी काम हो गए, जिन्दगी में कभी किसी चीज का अभास नहीं रहा।'

अगर इतनी ऊंची बात समझ में नहीं आती है तो उस परमात्मा का एक रूप बना लो जो आपको प्यारा लगे और जिसमें आपका विश्वास हो। परन्तु विश्वास एक ही का हो, क्योंकि परमात्मा एक ही है –

'एक ही साधे सब सधे, सब साधे सब जाये'। वास्तव में परमात्मा एक शक्ति है जो अंश रूप में हर मनुष्य के अन्तर में है। इसका मनुष्य को ज्ञान नहीं है और ज्ञान है तो विश्वास नहीं है। मैं 1962 से यह ज्ञान सत्संगों में तथा पढ़े–लिखे बुद्धिमानों को पुस्तकें लिखकर पूरे देश व प्रदेश में भेज रहा हूँ और लोगों को सचेत कर रहा हूँ कि तुम धर्म के नाम पर मत भटको, घर बैठे मेरी ये पुस्तकें पढ़ो और बात को समझो। घर बैठे अपने इस जीवन को सुख–शांति का बना लो तथा अपने अन्तर स्थित परमात्मा का सहज में अनुभव कर लो। इस रूप को जानने के लिए बस आपके लगन की आवश्यकता है और मन के भीतर नाना प्रकार के उठने वाले विचारों को त्यागना है। यदि अपना उद्धार करना चाहते हो तो अपनी सुरत को अन्तर में स्थित प्रकाश व

शब्द में ले जाओ, क्योंकि अन्तर में स्थित प्रकाश ही गुरु के चरण है। इन बाहरी गुरुओं के चरणों को पकड़ने से तुम्हारा बेड़ा पार नहीं होगा। जैसे –

तेरी काया में सत करतार, भटका क्यों खावे।
तेरी काया में ही स्वर्ग द्वार, भटका क्यों खावे।।

बाहरी गुरु का तो इतना ही काम है कि वह तुमको कर्म योग, भक्ति योग व ज्ञान योग के द्वारा इन चक्रों से निकाल देगा और तुम्हारी सब प्रकार की सहायता भी कर देगा। शर्त यह है कि बाहरी गुरु अनुभवी हो और आपका उस पर विश्वास हो, फिर देर लगने वाली कोई बात नहीं है। जैसे दाता दयाल जी ने लिखा है –

जब दया गुरु की हुई, चरणों की भक्ति मिल गई।
सब निर्बलता मिट गई, निश्चय की शक्ति मिल गई।।
आ गए सत्संग में, और संग सत का हो गया।
दुर्मति जाती रही, जब गुरु के मत का हो गया।।
प्रेम का प्याला पिया, पीते ही मतवाला बना।
मन की सुधि बुधि खो गई, भोला बना भाला बना।।
पांव में मस्तक नवाया, चित से धारा गुरु का रंग।
कीट जिसको पहले सब, कहते थे अब ठहरा भिरंग।।
आप में आपा लखा, आपे में आपा ज्ञान था।
भरम से भटका हुआ, भूला था और अज्ञान था।।
शब्द के सुनते ही अन्तर में, जो वृत्ति सो गई।
छिन में पल में वासना, माया की सारी खो गई।।
सतनाम, सतनाम, सतनाम राग को।
गा रहा हूँ धन्य मैं कहता हूँ, अपने भाग को।।

मनुष्य जीवन के विशेष विचार भाव

इस संसार में हमारा प्रयास, हमारी मेहनत हमारे विचार-भाव आदि सब कुछ बाह्य प्रभावों से प्रभावित है। यहां क्या राजा क्या प्रजा, क्या गुरु क्या महात्मा, क्या अमीर क्या गरीब सब के सब इन बाह्य प्रभावों के वश अपना-अपना कर्म करने को मजबूर हैं। इसलिए-

'होइ है वहीं जो राम रचि राखा।
को कर तरक बढावत शाखा।।'

अत: जब तक मनुष्य को इस रचना की असलियत, सारतत्व या सच्चाई का ज्ञान नहीं होता, तब तक वह इस रचना या प्रकृति के खेल में इन बाह्य प्रभावों के फल, दुख-सुख, हर्ष-शोक आदि से बच नहीं सकता है। मनुष्य के मन में उठने वाले तरह-तरह के विचार ही उसके दुखों का कारण है। विचार बदलने पर कोई दुख नहीं रहता है। बस विचार को बदलना ही कठिन है। यह बुरे विचार ही विकार कहलाते हैं। यह मन ही है जो अंहकार के स्थान पर बैठकर तुम्हें अहंकारी, लालच के स्थान पर बैठकर लालची, काम के स्थान पर बैठकर कामी, क्रोध के स्थान पर बैठकर क्रोधी और मोह के स्थान पर बैठकर मोही बना देता है। यह मन ही है जो तुमको दीनता के स्थान पर बैठकर दीन, निर्लोभता के स्थान पर बैठकर निर्लोभी, निष्काम के स्थान पर बैठकर निष्कामी, अक्रोध के स्थान पर बैठकर अक्रोधी और निर्मोह के स्थान पर बैठकर निर्मोही बना देता है। अर्थात् मन में चंचलता और

निश्चलता दोनों है। कबीर साहब लिखते हैं –

कबीर बिषिया दूरकर, त्याग मोह मद काम।
क्रोध लोभ को जो तजे, ताहि मिले निज नाम।।

जब तक काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार का त्याग नहीं होता, तब तक मनुष्य सच्चे अर्थ में नेक नहीं हो सकता, क्योंकि कुल बुराइयों की जड़ इन्हीं में है। इनका त्याग करना सहज नहीं है क्योंकि यह सब मानव के भाव है। मेरे अनुभव के अनुसार इनके त्याग का अर्थ वह नहीं है जो जन साधारण का ख्याल है क्योंकि ये इस लोक में मनुष्य जीवन के अति आवश्यक भाव हैं। ये बीज रूप में मनुष्य की सुरत तत्व में मौजूद है। जैसे आम की गुठली में आम का पेड़, पत्ते, फूल, फल सब बीज रूप में मौजूद है। इसी प्रकार यह विचार, भाव मानव की सुरत में बीज रूप से हैं, परन्तु इनको उचित समय में उचित मात्रा में होना चाहिए। यानी इन्हें समता में रखना चाहिए। जिस तरह मिट्टी का ढेला बारीक होकर जमीन छोड़ देता है और वायु में उड़कर ऊंचे आकाश पर जा पहुंचता है अथवा बर्फ का पानी गर्मी पाकर भाप बनकर ऊपर की ओर चढ़ने लगता है। इसी तरह मानवीय भाव को यदि प्रेम के आधीन कर लिया जाए तो यह हानिकारक होने की बजाय लाभदायक सिद्ध होंगे, जिससे मनुष्य की भलाई हो सकती है। उदाहरण के तौर पर जैसे भोजन के अन्दर साग-सब्जी में यदि नमक, मिर्च, हल्दी आदि उचित मात्रा में हो तो सब्जी रूचिकर होगी और यदि उसमें वे कम या ज्यादा मात्रा में होंगे तो वह स्वादिष्ट नहीं होगी।

काम : इन विकारों में सबसे पहले काम को लीजिए। बहुत कम लोग ऐसे होंगे जो काम के ठीक अर्थ को समझते होंगे।

काम काम सब कोई कहे, काम न चीन्हे कोय।

जेती मन की कामना, काम कहावे सोय।।

काम का असली अर्थ है – इच्छा, वासना और लालसा। मन में जितनी इच्छाए और वासनायें उठती हैं वह सब काम का रूप है। कबीर साहब कहते हैं –

जहां काम तहां नाम नहिं, जहां नाम नहिं काम।
दोनों कबहु ना मिलें, रवि रजनी एक ठाम।।

इस मन में केवल एक ही वस्तु रह सकती है। परमार्थ का ख्याल होगा या स्वार्थ का ख्याल होगा। दोनों एक साथ नहीं हो सकते। काम का स्थूल रूप भोग विलास की इच्छा है। इस काम अंग से मनुष्य इच्छा के साथ योग्य सन्तान उत्पन्न करें, व्यर्थ में अपने स्वाद के लिए शक्ति नष्ट न करें। यही इसकी उपयोगिता है।

इस काम या इच्छा में जहां बाधा या रूकावट आती है तो मनुष्य में क्रोध उत्पन्न हो जाता है जो न केवल क्रोधी का ही नुक्सान करता है अपितु जिस पर क्रोध किया जाता है उसकी भी हानि होती है। और यदि यह इच्छा पूरी हो जाती है तो लोभ उत्पन्न हो जाता है और लालच बढ़ता जाता है। लालच के बढ़ने से मोह उत्पन्न होता है। मोह से बुद्धि भ्रमित हो जाती है और बुद्धि (ज्ञान शक्ति) के नष्ट हो जाने से उसका विनाश निश्चित है। जैसा कि श्रीमद्‌भगवत गीता में लिखा है –

ध्यायतो विषयान् पुंसः संङ्गस्तेषूपजायते।
संङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

अर्थात् विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न हो

जाती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से मूढ़ भाव उत्पन्न हो जाता है और मूढ़भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञान शक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि नष्ट हो जाने से यह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है।

भाव यह है कि क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार ये सब काम के बदले हुए रूप हैं। यदि काम न होता तो इस दुनिया का बनना असम्भव होता, क्योंकि काम ही दुनिया में हर वस्तु को पैदा करने वाला है। इस काम से बचने का उपाय यही है कि किसी अच्छे विचार को मन में स्थान दे दो और मन को उसमें लगाए रखो। जैसे –

काम क्रोध सूतक सदा, सूतक लोभ समाय।
शील सरोवर न्हाये, तब यह सूतक जाय।।

क्रोध : काम की तरह क्रोध भी दुधारी तलवार है जो दोनों ही ओर वार करती है। लोग कहते हैं कि निन्दा करना बुरा है, मगर क्रोधी मनुष्य इनसे कई गुणा अधिक पाप करता है। कबीर साहब का कथन है –

निन्दक से कुत्ता भला, जो हित कर मांडे रार।
कुत्ते से क्रोधी बुरा, जो गुरुहिं दिलावे गार।।

इसलिए सोच समझकर मुंह से बात निकालनी चाहिए। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि तुम क्रोध करो और दूसरा इसके प्रभाव में न आए। एक बार की बात है कि कोई महापुरुष लोगों को अपना प्रवचन सुना रहे थे। एक शरारती तत्व ने उठकर कहा कि महात्मन्, इन आपके शब्दों से लोगों पर क्या प्रभाव पड़ता है? आपके इन शब्दों से लोगों में कोई परिवर्तन नहीं आता है। महापुरुष ने यह बात सुनकर उस व्यक्ति को गाली–गलौच करनी शुरु कर दी। इस पर वह व्यक्ति

बोला कि आप कैसे महापुरुष है? जो ऐसे अपशब्द मुंह से निकाल रहे हैं। यह सुनकर महापुरुष जी मुस्कराए और कहने लगे कि आप तो कह रहे थे कि शब्दों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता फिर मेरे अपशब्दों का आप पर कैसे प्रभाव पड़ा? यह सुनकर वह पुरुष लज्जित हुआ और उसने क्षमा मांगी। इसीलिए कहा है कि –

बोली तो अनमोल है, जो कोई जाने बोल।
हिए तराजू तोल कर, तब मुख बाहर खोल।।

शब्द बराबर धन नहीं, जो कोई जाने बोल।
हीरा तो दामों मिले, शब्द का मोल न तोल।।

शीतल शब्द उचारिये, अहम् आनिये नाहिं।
तेरा प्रीतम तुझ में, दुश्मन भी तुझ माहिं।।

इसलिए जहां तक हो सके, इस क्रोध से बचना चाहिए क्योंकि यह मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। शास्त्रों में क्रोध की तुलना अग्नि के साथ की है। जैसे अग्नि सब कुछ जलाकर भस्म कर देती है उसी तरह क्रोधी मनुष्य अपना व दूसरों का नुक्सान कर बैठता है। जैसे –

जगत माहिं धोखा घना, अहम् क्रोध और काल।
पार पहुंचा कर मार दे, ऐसा जम का जाल।।

जो आदमी क्रोध से बचता है और कुटिल वचन को सहता है वही सच्चा साधु है। जैसे –

खोद खाद धरती सहे, काट कूट वन राय।
कुटिल वचन साधु सहे, और से सहा न जाय।।

लोभ : इस संसार के लोग लोभ, लालच के जाल में फंसे रहते हैं और इसका परिणाम वही 'ढाक के तीन पात' निकलता है। इसी लालच के कारण कोई जुआ खेलता है, कोई लॉटरी की टिकट खरीदता है, कोई रिश्वत लेता है, कोई अपमानित होता है, कोई किसी के सामने गिड़गिड़ाता है लेकिन उसके हाथ कुछ नहीं आता। इस लालच के चक्कर में उसके जीवन की खुशी उससे कोसों दूर चली जाती है। इस दुनिया में कोई किसी को कुछ नहीं दे सकता। सब अपना-अपना भाग्य साथ लाते हैं। जैसे बच्चा माँ का दूध अपने साथ लाता है। यदि जीविका या धन भाग्य में है तो वह थोड़ी मेहनत या लॉटरी इत्यादि से हाथ में आ जायेगा और यदि भाग्य में नहीं है तो उसे नहीं मिलेगा, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वह हाथ पर हाथ धरकर बैठ जाए, उसे मेहनत करनी चाहिए और फिर जितना मिले, उसमें सन्तोष करना चाहिए। जैसे -

गौ धन, गज धन, बाज धन, और रतन धन खान।
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूरि समान।।

साध सन्तोषी सरवदा, जिनके निर्मल बैन।
तिनके दर्श और पर्श से, जीव उपजै सुख चैन।।

चाह मिटी चिन्ता गई, मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछु न चाहिए, सोई शहंशाह।।

इसलिए जीवन की आवश्यकता के लिए लोभ लालच होना चाहिए परन्तु आवश्यकता से अधिक संग्रह करना दुख का कारण होगा।

मोह : इस दुनिया के नश्वर पदार्थों के साथ आसक्ति रखना ही मोह

है। मोह का असली अर्थ, भ्रम, अज्ञान व धोखा है। कहने को सब कहते हैं कि यह संसार मोह माया का जाल है परन्तु कौन ऐसा व्यक्ति है जो इस मोहमाया के जाल में ग्रसित नहीं होता। संसार को मिथ्या कहने वाले लोग बहुत है लेकिन मिथ्या दिखाने वाला एक भी दृष्टिगोचर नहीं होता। वास्तव में यह संसार एक नाटकशाला है। यहां एक के बाद दूसरा दृश्य आता है और पर्दे पर पर्दे गिरते रहते है। कहीं जन्म की खुशी है तो कहीं मरने का शोक, कहीं लाभ है तो कहीं हानि, कहीं तरक्की है तो कहीं बर्बादी। यह तमाशा देखने वालों को पता भी है कि यह केवल खेल है फिर भी सब लोग इस खेल से बंधे हुए हैं। इस खेल में कुछ ऐसा मिठास है कि लोगों का जी नहीं भरता। इसी को मोह कहा है। जो साक्षी भाव से इस खेल को देखता है बस वही इस खेल में फंसता नहीं है। जैसे –

'यह जग नाटकशाला साधो, यह जग नाटकशाला'।
सुरत ने अद्भुत वेश बनाए, नाचे नाच रसाला।
गावे भाव दिखावे छिन्न-छिन्न, खेले खेल निराला।।

साक्षी देखे विमल तमाशा, चित रहे सुखी सुहाला।
भूल भरम में जो कोई आया, सहे कर्म का भाला।।

कहने का भाव यह है कि यह संसार स्वपनवत् है। स्वपन में आँख खुलते ही स्वपन का खेल खत्म, इधर आँख बन्द होते ही उसकी दुनिया का खेल खत्म। बस अन्तर इतना है कि यह एक लम्बा स्वपन है। जैसे कबीर ने लिखा है –

स्वपन यह संसार है भाई, स्वपन यह संसार।
स्वपन मात-पिता है, स्वपन है घर की नार।।

स्वपन राजा स्वपन प्रजा, स्वपन है घर बार।
स्वपन खिड़की स्वपन चौखट, स्वपन फाटक द्वार।।

स्वपन घोड़ा स्वपन हाथी, स्वपन जग व्यौहार।
स्वपन भाई स्वपन बन्धु, स्वपन सुत परिवार।।

स्वपन उत्तम स्वपन मध्यम, स्वपन जीत और हार।
स्वपन तलवार स्वपन बरछी, स्वपन सब हथियार।।

स्वपन पूजा स्वपन भक्ति, स्वपन सर का भार।
कहें कबीर यह तब छूटें, जब मिले गुरु दातार।।

इसलिए गुरु से ज्ञान लेकर इस बात को समझ लेना चाहिए और मोह से बचना चाहिए। यहां कौन किसका बेटा है और कौन किसका बाप? सब लेन-देन का झगड़ा है। अर्थात् यहां कोई अपना नहीं है अत: उचित मोह के साथ उसे अपना इस लोक का जीवन सुन्दर बनाते हुए अपना परलोक सुधारना चाहिए, क्योंकि न जाने कब काल उसे अपना ग्रास बना ले।

आस-पास जोधा खड़े, सभी बजावें गाल।
बीच महल से ले चला, ऐसा काल कराल।।

हम जाने थे खायेंगे, बहु जमीन बहु माल।
ज्यों का त्यों ही रह गया, पकड़ ले गया काल।।

इसलिए

गांठी होय सो हाथ कर, हाथ होय सो देह।
आगे हाट न बानियां, लेना हो सो ले।।

देह धरे का गुन यही, देय देय कुछ देय।
कहे कबीरा देय तू, जब लग तेरी देह।।

देह खेह हो जायेगी, कौन कहेगा देह।
निश्चय कर उपकार ही, जीवन का फल येह।।

अहंकार : अहंकार एक तरह के गुबार का रूप है जो मन से निकलता रहता है। यह दो शब्दों से मिलकर बना है: अहम् तथा कार। अहम् का अर्थ है – मैं और कार का अर्थ करने वाला। इस अहम् या मैं के साथ हम जो भी जोड़ते हैं, उसको 'कार' कहते हैं। जेसे मेरा घर, मेरा पति, मेरी पत्नी, मेरा गुरु, मेरा मन्दिर यानी जो भी हम अपने साथ जोड़ते हैं या कोई भी निशान बनाते हैं वह कार है। यह जो जोड़ते हैं वह कभी न कभी टूटेगा ही, साथ नहीं रहेगा। क्योंकि यह मैं अकेला आया है और अकेला ही जायेगा।

परन्तु याद रहे कि इस कार के बगैर हम इस लोक में रह नहीं सकते। हमारा कोई निशान जरूर होगा। मेरा बेटा, मेरी पत्नी – उनसे खूब प्यार करो, परन्तु यदि वह चले जायें तो हाय–हाय न करो क्योंकि यह कार तो एक न एक दिन टूटेगी ही। मेरा धन, खूब भोगो, खाओ और खिलाओ परन्तु अगर निर्धनता आ जाये तो हाय–हाय मत करो क्योंकि इस कार ने तो एक न एक दिन टूटना ही है। यह प्रकृति का सिद्धान्त है कि जो जुड़ता है वह टूटता है। बस यह बात समझ में आ

जाए तो दुख न होगा। लेकिन यह बात लोगों के समझ में नहीं आती है क्योंकि उनके ऊपर अहंकार रूपी अज्ञानता का पर्दा पड़ा है। कबीर साहब कहते हैं –

मैं मैं बुरी बलाय है, सको तो निकसो भाग।
कहे कबीर कब लग रहे, रूई लपेटी आग।।

मनुष्य लोभ और मोह से तो फिर भी छुटकारा पा सकता है, मगर अहंकार से बचना कठिन काम है। यही मान बड़ाई का ख्याल देता रहता है। बड़े-बड़े ज्ञानी लोग इस अहंकार के कारण मारे गए और मारे जा रहे हैं। गुरुनानक देव जी का कथन है –

होमे दीर्घ रोग है, दारु भी इस माहि।

सुखी बसे मस्तानिया, आप निवार तले।
बड़े-बड़े अहंकारिया, नानक गरभ गले।।

बड़े-बड़े महापुरुष, गुरु, पीर जिनको लाखों मनुष्य भगवान का रूप मानते है और जिनके रूप की पूजा करते हैं, वे भी इस अहंकार के जाल में फंस जाते हैं।

कहते हैं कि प्राचीनकाल में एक साधु वैराग्य का जीवन व्यतीत करता था। धीरे-धीरे लोग उससे लाभ उठाने लगे और उसका यश बढ़ गया। जब यह बात उस देश के राजा के कान में पड़ी तो वह भी साधु से मिलने आया और धीरे-धीरे वह राजा और रानी दोनों उसके चेले बन गए। फिर तो शहर के लोग धड़ाधड़ उसके शिष्य बन गए और चारों ओर उसका यश फैल गया। पहले तो वह साधु कहीं आता-जाता नहीं था, परन्तु धीरे-धीरे वह महल में आने-जाने लगा। जब वह घर आता तो अपने मन को बेचैन पाता। वह इस बात पर

विचार करने लगा और सोचते-सोचते उसके यह बात समझ में आ गई कि महल में मेरा आदर किया जाता है और लोग मेरी प्रशंसा करते हैं तो इस प्रशंसा से मुझ में अहंकार आ गया है। यही मन में बेचैनी पैदा करता है। बात सच्ची थी। जिसकी इस संसार में प्रशंसा की जाती है वह गर्व से फूल जाता है और उसमें अहंकार आ जाता है। साधु ने महल जाना बंद कर दिया, परन्तु राजा कब मानने वाला था। अन्त में जब वह राजा के बुलाने से महल में गया तो सीधा रानी के कमरे में गया, जहां रानी का बहुत कीमती हार लटका हुआ था और वहां कोई नहीं था। उस साधु ने वह हार अपने गले में डाला और चलता बना। दरबान ने उसे देख लिया और सोचा कि रानी ने उसे दे दिया होगा। जब थोड़ी देर बाद रानी ने अपना हार ढूंढा तो नहीं मिलने पर उसकी खोज हुई। दरबान ने बताया कि हार साधु ले गया है। फिर साधु को पकड़कर लाया गया। हार उसके गले में था। सारे शहर में उसकी चोरी का समाचार फैल गया। साधु का अपमान हो गया था इसलिए उसका चित्त ठिकाने आ गया।

जब कुछ दिन बाद राजा रानी को ज्ञात हो गया कि साधु ने महल में न आने के बहाने से यह चोरी की थी तो वह दोनों क्षमा मांगने साधु के पास गए। साधु ने कहा- राजन्! दुनिया की चाल से मैं बहुत हार गया था,, अब इस हार चुराने से दुनिया मुझ से हार गई। अब आप दया कीजिए। न मैं आपका गुरु हूँ और न आप मेरे चेले हैं। मैं इसी में खुश हूँ। इसीलिए कहा है -

कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान बड़ाई ईर्ष्या, दुर्लभ तजनी येह।।

माया तजी तो क्या हुआ, मान तजा नहीं जाय।
पीर पैगम्बर औलिया, मान सभी को खाय।।
अहंकार अग्नि हिरदे जले, सबसे चाहे मान।
तिनको जम नोता दिया, तुम हमरे मेहमान।।

जहां आपा तहां आपदा, जहां संशय तहां शोक।
कहे कबीरा क्यों कर मिटे, चारों दीरघ रोग।।

इस अहंकार से बचने का उपाय यही है कि –

काला मुंह कर मान का, ओर लगा दे आग।
मान बड़ाई छोड़कर, रहे नाम लौ लाग।।

जैसे पाकिस्तान में एक कालेशाह नाम का फकीर था, जिसके पास शहर के सभी लोग दुआएं मांगने जाते थे। एक दिन एक प्रसिद्ध वैश्या जो सांसारिक जीवन में समर्थ थी, वह भी उनके दर्शनार्थ वहां गई। उस वैश्या ने वहां एक मार्फत (मुक्ति) की गजल सुनाई, जिसे सुनकर फकीर बहुत खुश हुआ। फकीर ने कहा कि बेटी तुम जो चाहती हो, मुझसे मांगो।

वैश्या ने हाथ जोड़कर कहा, सांई ! आपका दिया हुआ सब कुछ मेरे पास है, किसी चीज का जीवन में अभाव नहीं है। फकीर ने फिर यही दोहराया कि बेटी, कुछ मांगो। तब वैश्या ने अर्ज की कि सांई, यदि कुछ देना ही चाहते हो तो मेरे भाग्य में दो रोटी हों तो उन्हें या तो तीन कर दें या फिर एक कर दें।

यह बात सुनकर फकीर को होश आया और उसके बाद वह रोज सुबह उठकर अपना मुंह स्याही से काला कर लेता था और अपने पास आने वाले लोगों को यह कहता था कि –

'खुदा के हुक्म वाला, काकू शाह का मुंह काला।'

इसके बाद जब तक वह जिया, वह हर रोज अपने मुंह को काला करके यही बात दोहराता था। यदि यह बात आज के महापुरुषों को समझ में आ जाए कि कोई किसी को कुछ नहीं दे सकता तो उनका अहंकार दूर हो सकता है। सच्चाई यह है कि कोई सच्चा महात्मा है तो होने वाली बात उसके मुंह से सहज ही निकल जाती है। इसलिए –

लेने को सतनाम है, देने को अन्न दान।
तैरने को है दीनता, डूबन को अभिमान।।

क्रोध का आदि उन्मत्तता और अन्त अपयश है।
लालच का आदि स्वार्थ और अन्त अपमान है।
मोह का आदि भ्रम और अन्त उन्माद है।
काम की आदि उन्मत्तता और अन्त ख्वारी है।
अहंकार का आदि अहंभाव ओर अन्त मृत्यु है।

क्रोध लोभ मद मोह से, बाचे कोई दास।
कहे कबीर विचार कर, यह सब सदा उदास।।

जहां दया तहां धरम है, जहां लोभ तहां पाप।
जहां क्रोध तहां काल है, जहां क्षमा तहां आप।।

अत: काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार ये सब मनुष्य जीवन के आवश्यक गुण हैं। इनके बिना मनुष्य जीवन निरर्थक है। बस जरूरत है तो यही कि इनको उचित स्थान में प्रयोग में लाया जाए, क्योंकि अति हर चीज की खराब है।

विशेष ऋषि और उनका ज्ञान

हमारा भारत देश अध्यात्म ज्ञान के क्षेत्र में विश्व के सब देशों में प्रथम स्थान पर है। यहां बहुत से ऋषि मुनि हुए हैं परन्तु उनमें चार मुख्य है – एक मनु, दूसरे भृगु, तीसरे वशिष्ठ और चौथे महर्षि व्यास जी हुए हैं।

ऋषि मनु ने सांसारिक जीवन में जीवों को मर्यादाबद्ध करते हुए उनका मार्गदर्शन किया कि संसार में उचित व्यवहार व अच्छा बर्ताव करो तथा रीति-रिवाजों को मानते हुए व खुशियां मनाते हुए सुख-शान्ति का जीवन जीयो। उन्होंने 16 संस्कार, धार्मिक व्यवहार व नेक, योग्य सन्तान उतपन्न करने की विधि बताई, जो संसार को स्वर्ग जैसा बना सकें।

ऋषि भृगु ने भृगु संहिता तैयार करके कर्मकाण्ड या कर्मों के फल से बचने का उपाय बताया। उन्होंने बताया कि यह संसार संकल्पमय है यानी कल्पना का है। जैसे जिसकी इच्छा या विचार है वैसा ही उसका जीवन हो जाता है। यहां मनुष्य अपने ही अच्छे या बुरे विचारों का फल भोगता है। अच्छे विचारों और कर्मों का फल खुशी, लाभ व सुखी जीवन का होता है तथा घटिया या बुरे विचारों व कर्मों का फल दुख, क्लेश, चिन्ता, फिक्र व डर-भय वाला होता है। अगला जन्म या पुनर्जन्म भी मनुष्य के विचारों और इच्छा के अनुसार ही होता है।

ऋषि वशिष्ठ ने 'योग वशिष्ठ' नाम की एक अच्छी पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने अपना अनुभव छोटी-छोटी कहानियों में लिखा है। उन्होंने लिखा है कि यह जितनी भी रचना है सब संकल्पमय है।

यहां जो कुछ हम देख रहे हैं, माया है यानी है नहीं, भासता है। इसका प्रमाण देते हुए लिखा है कि ब्रह्मा का शरीर खून, माँस, मज्जा का नहीं है अपितु उसका शरीर संकल्प यानी कल्पना का है जो है नहीं, भासता है। जैसे हम स्वपन में किसी को देखते हैं, बातें करते हैं, परन्तु जब आँख खुलती है तो वहां कुछ नहीं होता।

ऋषि व्यास ने इन तीनों का समर्थन करते हुए इस संसार से सदा के लिए मुक्त होने के लिए निवृत्ति मार्ग बताया कि तुम योग साधन करके इस माया देश या काल देश से सदा के लिए मुक्त हो जाओ। यहां काल और माया के देश में जीवन समता में नहीं रह सकता है। मनुष्य अन्तरमुख योग का अभ्यास करके, अपने निज रूप का अनुभव करके ही सदा के लिए इस काल, माया के देश से मुक्त हो सकता है। लेकिन मनुष्य इस निवृत्ति मार्ग में तो तभी आयेगा, जब वह इस वशिष्ठ जी के ज्ञान तक पहुंचेगा। मनु के नियम में रहने वाला तो केवल इस जीवन को श्रेष्ठ बना सकता है। जब मनुष्य को यह ज्ञान हो जायेगा कि यह सारा संसार संकल्पमय है और इस समस्त संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय ब्रह्मा, विष्णु, महेश यह सब मनोमय व मायाकृत है तभी वह निवृत्ति मार्ग में जा सकता है। इससे आगे सन्त मत शुरु होता है। यह निवृत्ति मार्ग की शिक्षा आम लोगों के लिए नहीं है, क्योंकि इसके अधिकारी बहुत कम हैं। उनके लिए प्रवृत्ति मार्ग का रास्ता श्रेष्ठ है। हमारे ऋषियों ने आम लोगों की उन्नति के लिए 'शिव संकल्प' का मार्ग बताया, जिसमें उन्होंने आशावादी व कल्याणकारी भाव, इच्छाएं व विचार रखने पर बल दिया, जिससे उनका इस लोक का जीवन सुखदायी हो सके। सन्त केवल सुरत को पूर्णता अर्थात् निज देश में ले जाने की सुगम से सुगम विधि बताते हैं। कबीर साहब का एक शब्द

देखिए –

मार्ग विहंगम बतावै सन्त जन, मार्ग विहंगम बतावै।।

कौन घर से जीव की उत्पन्न हुई, कौन ही घर को जावे।
कहां जाय जीव परलै होवे, सो सुरत तहां चढ़ावै।।
गढ सुमेर वाहि को कहिए, सुई नाके से जावे।
भवमण्डल से परचा करले, पर्वत धौल लखावे।।

द्वादश कोट साहब का डेरा, तहां ले सुरत ठहरावे।
वाको रंग रूप नहिं रेखा, कौन पुरुष गुण गावे।।

कहे कबीर सुनो भाई साधो, जो ये पद लख पावे।
अमर लोक झूले हिंडोला, सतगुरु शब्द सुनावे।।

कबीर ने यह शब्द रहस्य में कहा है जिसे कोई साधक ही समझ सकता है। मेरे मतानुसार सुरत जब अलख–अगम के सफर में सार शब्द के साथ चलते–चलते शब्द में लीन हो जाती है तब ये उसकी अन्तिम अवस्था है। इसे अनुभव से ही जाना जा सकता है।

इन चारों ऋषियों का अनुभव मैंने आपकी सेवा में एक रहस्य समझाने के लिए लिखा है। न तो मैंने इन ऋषियों का साहित्य पढ़ा है और न मैंने कोई धार्मिक ग्रन्थ पढ़े हैं। कुछ प्रेमी सज्जनों ने मेरे सत्संग सुनकर अपने अनुभव ज्ञान पर मुझे कुछ पुस्तकें लिखने की इच्छा प्रकट की ओर मैंने सहज ही मन के मण्डल पर एकाग्र होकर मन से 12 पुस्तकें लिख डाली। अब मैंने एक पुस्तक में संक्षेप में इन चारों ऋषियों के विचार पढ़े तो मैं सोचने लगा कि मैंने अपनी पुस्तकों में बहुत ही खोलकर अपने योग साधन के सहज अनुभव के आधार पर

इन ऋषियों के ज्ञान को लिखा है। मैंने न तो इनका ज्ञान पहले पढ़ा था और न सुना था तो यह कहां से मेरे दिमाग में आए?

इसका रहस्य यह है कि अब से पहले जितने भी ध्यानी या विचारक हुए हैं, उनके विचार भाव सब इस आकाश या ब्रह्माण्ड में मौजूद हैं। अब जो मनुष्य जिस प्रकृति का है वह मन एकाग्र करके जो चाहता है उसी ही तरह के विचार या ज्ञान जो इससे पहले सज्जन हुए हैं, ब्रह्माण्ड में से उनसे खिंचकर उसके एकाग्र मन पर आ जाते हैं। यदि कोई चोर है तो चोरी के नए-नए विचार, यदि कोई वैज्ञानिक है तो वैज्ञानिकता की नई-नई सूझ-बूझ और यदि कोई डॉक्टर है तो ईलाज सम्बन्धी विचार या भाव मन की एकाग्रता होने पर ब्रह्माण्ड में से उसके पास आ जाते हैं। इसका एक प्रमाण तो मैं खुद अब जीवित बैठा हूँ। यह 12 पुस्तकें मैंने इसी ही (Law of Radiation) विकिरण धारा के नियम के अनुसार लिखी हैं। यह माँग और पूर्ति का सिद्धान्त है। यानी जहां चाह वहां राह। (Where there is demand, there is supply) यह इस लोक का प्राकृतिक नियम है कि जिस चीज की जहां आवश्यकता होती है, उसकी पूर्ति हो जाती है। मेरी 12 पुस्तकें और तेरहवीं यह पुस्तक इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण हैं।

सत्संग कराने का अधिकारी कौन?

हम जैसे लोगों की संगत करते हैं उनके गुण-अवगुणों का प्रभाव हमारे मन पर असर करता है, क्योंकि हर मनुष्य एक तरह का रेडियो स्टेशन है। उसके विचार भाव जो वह सोचता है, बाहर बहते रहते हैं। भले मनुष्य से नेक और भले विचार तथा बुरे मनुष्य से घटिया विचार निकलते रहते हैं। जो जिसका संग करता है या मिलता-जुलता रहता है उसमें उसके विचार भाव आते रहते हैं। यह Law को Radiation यानी विकिरण धारा का सिद्धान्त है। जैसे एक सज्जन कोई गुरु महाराज जी की वेशभूषा पहने किसी गुरु गद्दी पर बैठा है और वह मन, वचन, कर्म से पवित्र नहीं है तो जो सत्संगी, भाई-बहन, बेटियां उसका ध्यान करेंगे तब उसके गुण-अवगुण सहज में उसका ध्यान करने वाले में आ जायेंगे। जैसे कोई महापुरुष अपने डेरे या आश्रम के लिए धन चाहता है तो उसके विचार से धीरे-धीरे धन आना शरु हो जायेगा और यदि कोई अपने शिष्यों की संख्या बढ़ाना चाहता है तो शिष्यों की भीड़ इक्ट्ठी हो जायेगी। कई महापुरुष सत्संग में बेठे सत्संगियों पर बहुत क्रोध करते हैं। तो उनका सत्संग सुनने वाले सत्संगी सज्जनों में क्रोध का भाव आयेगा ही। यह सत्संग देना कोई आसान काम नहीं है। जो सत्संग देने वाला महात्मा मन, वचन और कर्म से पवित्र न हो और शब्द, प्रकाश का खुद साधक न हो तो उसके सत्संग से संगत यानी सुनने वालों को कोई लाभ न होगा। यह बात सत्संग देने वाले महापुरुष खुद ही सोच लें।

दूसरी बात कोई भी सज्जन जो सत्संग देता है वह यदि शब्द प्रकाश का साधक नहीं है और मन, कर्म, वचन से पवित्र नहीं है तो उस सज्जन पर संगत के घटिया विचारों के संस्कार असर करेंगे और

वह गिर जायेगा। इस गुरुवाई और सत्संग कराने को कुछ सज्जनों ने खीर-खाण्ड समझ रखा है। याद रखें अगर गुरु के संस्कार और विचार भाव शिष्यों पर प्रभाव डालते हैं तो शिष्यों के विचार भाव भी गुरु जी पर अपना प्रभाव डालेंगे। यह पूज्य गुरुओं के लिए समझने की बात है। मेरे अनुभव के अनुसार यही कारण है जो आजकल पूज्य महापुरुषों के साथ रोज-रोज की घटनाएं घट रही है। इसीलिए कबीर साहब ने चेतावनी दी है कि -

सतगुरु चीन्हो रे भाई।
सतनाम बिन सब नर डूबे, नरक पड़ी चतुराई। (टेक)

वेद पुराण भागवत गीता, इनको सब दृढावै।
जा का जन्म सफल रे प्राणी, जो पूरा गुरु पावै।।

बहुत गुरु संसार कहावै, मन्त्र देत है काना।
उपजै विनसै या भौसागर, मर्म न काहूं जाना।।

सतगुरु एक जगत का गुरु है, सो भव से कढियारा।
कहै कबीर जगत के गुरुवा, मर-मर ले अवतारा।।

फिर सतगुरु कौन है? जिसको अपने रूप का ज्ञान है। जो जीवों को सत्संग कराकर, सुरत को अन्तर के नाम की विधि बताकर उनको शान्ति दिलाता है और सच्ची बात बताकर उनका भ्रम दूर कर देता है कि वह सृष्टि का रचयिता मालिक शब्द ब्रह्म है और उस परमात्मा का अंश सुरत रूप में हर जीव के अन्दर मौजूद है। उसे पाने के लिए कहीं बाहर भटकने की आवश्यकता नहीं है। लोग भ्रम में आकर अपने को हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख व ईसाई आदि समझकर

आपस में लड़-लड़कर मर रहे हैं। वास्तव में हम सब एक हैं। वह जीव को यह सच्चा ज्ञान देगा कि 'हे मनुष्य इस संसार में कोई राम, कोई देवी-देवता या कोई गुरु-पीर किसी का सहायक नहीं बन सकता। उसका सच्चा सहायक उसकी बुद्धि, विवेक तथा ज्ञान ही हो सकता है और जो ऐसी बुद्धि, विवेक तथा ज्ञान की अनुभूति कराए, वही सच्चा सतगुरु है। ऐसे सतगुरु का सत्संग व आज्ञा पालन ही जीव को लाभ दे सकता है।' कबीर साहब ने लिखा है -

साधो सो सतगुरु मोहे भावै।
सतनाम का भर-भर प्याला, आप पीवै मोहे प्यावै। (टेक)

मेले जाय न महन्त कहावै, पूजा भेंट न लावै।
पर्दा दूर करै अखियन का, निज दर्शन दिखलावै।।

जा क दर्शन साहब दरसे, अनहद शब्द सुनावै।
माया के सुख दुख कर जानै, संग न सुपन चलावै।।

निशदिन सतसंगत में राचै, शब्द में सुरत समावै।
कहै कबीर ता को भय नाहीं, निर्भय पद परसावै।।

ऐसा महापुरुष हर समय परमात्मा शक्ति का अपने अन्दर अनुभव करता रहता है। न तो चलते-फिरते वह उसके अनुभव से अलग होता है और न बोलते हुए वह दूर होता है। यह मन जहां भी जाता है, वह उसे परमात्मा का खेल समझता है और उसमें फंसता नहीं है। जैसे -

भाई सोई सतगुरु सनत कहावे, जो नैनन अलख लखावै।
डोलत डिगे न बोलत बिसरे, जब उपदेश दृढावे।
प्राण पूज्य क्रिया ते न्यारा, सहज समाधि सिखावै।।

द्वार न रूंधै पवन न रोके, ना ही अनहद उरझावै।
यह मन जाये जहां लग जब ही, परमात्म दरसावै।।

ऐसा महापुरुष काम तो करता है परन्तु वह उसे अपना न मानकर परमात्मा का समझता है। अपने आपको निमित्त मानकर वह सब काम करता है और काम करने की यही विधि वह सबको बताता है। वह जो भी भोग भोगता है खाना–पीना, पहनना–ओढना, देखना इत्यादि इन सब भोगों में योग का अनुभव करता है यानी अपनी सुरत को शरीर व मन से ऊपर रखता है और हर हालत में खुश व प्रसन्नचित्त रहता है।

कर्म करे निकर्म रहे जो, ऐसी जुगती लखावै।
सदा विलास त्रास नहीं मन में, भोग में जोग जगावै।
भीतर रहा सो बाहर देखे, दूजा दृष्टि न जावै।

अर्थात् जो कुछ वह अपने घट में देखता है उसे ही स्थूल रूप में बाहर परमात्मा की लीला के रूप में देखता है। कबीर का कथन है कि ऐसा सतगुरु रूपी हंस ही आवागमन को मिटा सकता है।

यह एक जीवन्मुक्त या स्थितप्रज्ञ पुरुष की रहनी है। वास्तव में ऐसा महापुरुष ही सत्संग कराने का अधिकारी है। अब आप ही देखें कहां कबीर साहब का सन्त मत और कहां आज का गुरु मत। संसार के प्राणी निबल, अबल व अज्ञानी है। आजकल के डेरे व आश्रमों के अधिकतर गुरुओं ने अपनी युक्ति से ऐसा जाल बिछाया हुआ है कि जीव उसके जाल और विचारधारा से प्रभावित होकर उसके पीछे लगे हैं और वह अपना अस्तित्व भूले हुए हैं। यही काल और माया का जाल है। सन्त इसीलिए बार–बार यही चेतावनी देते हैं कि –

आप आपको आप पिछानो।
कहा और का नेक न मानो।।

इन्सान को जो कुछ मिलता है वह उसके अपने विचार, भाव,

आस, विश्वास व कर्म का फल मिलता है। वास्तव में यह करनी का मार्ग है, बातों का नहीं। जैसे कबीर ने एक शब्द में लिखा है –

साधो कथनी ज्ञान है झूठा।
राम के कहे जगत तर जाई, खांड कहे मुख मीठा।। (टेक)

पावक कहे पांव जो जरई, जल के कहै प्यास बुझाई।
भोजन कहै भूख मिट जाई, सब दुनिया तर जाई।।

नर के पास सूला एक बोलै, गुरु प्रताप न जाना।
जो कब हू उड़ जाय गगन में, बहुर सुरत नहीं आना।।

बिन देखे विन दर्श पर्श के, नाम कहै क्या होई।
धन के कहै धनी जो होई, निर्धन रहै न कोई।।

सांची हेत विषै माया में, सतगुरु शब्द की हांसी।
कहै कबीर गुरु से बेमुख, बांधै जमपुर जासी।।

वास्तव में मनुष्य को अपने निज रूप का ज्ञान नहीं है। वह यहां भ्रम में जी रहा है और यही उसके दुख का कारण है।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी, चेतन विमल सहज सुख रासी।
सो माया बस बन्धो गुसाई, आप ही बन्धो मरकट की नाई।।

अर्थात् यह मनुष्य ईश्वर का ही अंश है, चेतन विमल व आनन्द स्वरूप है। यह अविनाशी है यानी इस जीवात्मा का नाश नहीं होता। परन्तु यह अज्ञान से आप खुद ही यहां माया के बन्धन में आ गया है। जैसे बन्दर मटके में हाथ डालकर किसी चीज की मुट्ठी भर लेता है और मुट्ठी खोलता नहीं तो हाथ मटके से बाहर निकलता नहीं है। यही हालत इस मनुष्य के बन्धनों की है। इसका एक बन्धन नहीं

है, यह बहुत से बन्धनों से बन्धा है।

बंधे तुम गाढ़े बन्धन आन।
पहला बन्धन पड़ा देह का, दूसर तिरिया जान।
तीसर बन्धन पुत्र विचारो, चौथा नाती मान।।
नाती के कहिं नाती होवे, फिर कहो कौन ठिकान।
धन सम्पत्ति और हाट हवेली, यह बन्धन क्या करू बखान।।

भाग्य से उसे कोई मुक्त पुरुष मिले तो वह ही उसके बन्धन काट सकता है। जैसे कहा है -

सतगुरु बंधन काटन आए री, कोई कटवाना चाहे।

कौड़ी-कौड़ी माया जोड़ी, लखी करोड़ी कहावै।
जब जम तेरी गर्दन पकड़े, कौड़ी काम न आवै।।

विषय भोग की बन्धा है रस्सी, मन इच्छा बतलावै।
हंसा हो के जाए डोबड़ी, मोती कैसे पावै।।

बन्ध पर बन्ध की गांठ लगी है, काल कर्म भरमावै।
जिनके पूर्ण भाग पूर्वले, सन्त शरण में आवै।।

जो कोई छल-कपट से आता, उसको भी अपनावै।
जैसी चाहवै खुराक जीव, उसी ढंग से टीका लगावै।।

सतगुरु भेद अन्तर का देते, न मन्दिर पोथी पूजा लावै।
52 अक्षर 72 नाले, सात लोक का भेद बतावै।।

नाम दान दे के जीवों को, परमार्थ करवावै।
कर्म भोग को काट के, जड़-चेतन गांठ खुलावै।।

सतगुरु ताराचन्द नर चोले में, सतपुरुष का हुक्म बजावै।
कंवर काल से छूटे तभी, जब सन्त शरण में आवै।।

तो ऐसा सतगुरु कौन है जो जीव के बन्धन कटवाकर उसे मुक्त कर दे और वह कहां रहता है? याद रखें ऐसा पूर्ण सतगुरु किसी विशेष सम्प्रदाय का नहीं होता। वह तो मुक्त होता है और पूरी मानवता या इन्सानियत का गुरु होता है। अर्थात् जो आपको आपके रूप का अनुभव करा दे, वही पूर्ण गुरु है। वह बार-बार जीव को यह कहते हैं कि-

जब तक देखो न अपने नैना।
तब तक न मानो गुरु के बैना।।

जब जीव को सतगुरु द्वारा बताए गए सुरत-शब्द योग से अपने निज रूप का अनुभव हो जाएगा, फिर कोई सवाल ही नहीं बचेगा।

परन्तु अफसोस इस बात का है कि जीव इस लोक में काल-माया के चक्कर में फंसा है। वह मुक्त होना ही नहीं चाहता है। वह यहां बेहोशी में जी रहा है। मैं गुरु आज्ञा से 1962 से यह सत्संग का काम करा रहा हूँ। बहुत लोग सत्संग में आए परन्तु आखिर बात वह निकली जैसे- 'खोदा पहाड़ और निकला चूहा।' जैसे कबीर साहब ने कहा है -

ऐसी दुनिया हुई रे दीवानी, भक्ति भाव नहीं सूझे जी।
कोई आवे बेटा मांगे, यही गुसाई दीजे जी।।

कोई करावे ब्याह सगाई, भेंट रूपया दीजे जी।
कोई आवे दुख का मारा, हम पर कृपा कीजे जी।।

सांचे का कोई गाहक नाहिं, झूठा जग पतिजे जी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, अंधो का क्या कीजे जी।।

अर्थात् सत्संगी साधु के पास लेने वाली वस्तु नहीं मांगते अपितु वह वस्तु मांगते हैं जो उन्हें काल माया के जाल में फंसाती है और फिर उन्हें शिकायत रहती है कि ध्यान नहीं बनता और मैं सत्संग ही इस बात का देता हूं कि ध्यान क्यों नहीं बनता और मैंने ये 12-13 पुस्तकें भी इसी बात के लिए लिखी है। लेकिन लोग न तो पुस्तकें पढ़ना चाहते हैं ओर न ही उनके मन में कोई लगन या तड़फ है।

सब ही आए सतगुरु आगे।
वचन न पकड़ा दर्शन लागे।।
कहो सत्संग में क्या फल पाया।
वक्त गया और जन्म गंवाया।।

किसी के बड़े शुभ कर्म हो तो उसे कोई सच्चा सतगुरु मिलता है और उसके वचनों पर उसका विश्वास बनता है, तभी उसके सब दुख, कष्ट दूर होते हैं।

राम कृपा नाशे सब रोगा, जे इस भांति बने संयोगा।
सतगुरु वैद्य वचन विश्वासा, संजम यह न विषय की आसा।।

सतगुरु क्या करता है?

सच्चा अनुभवी सतगुरु दुखी जीवों को उनका स्वभाव व प्रकृति देखकर ऐसा उपाय बताता हैं जिस पर आचरण करने से उनके दुख व कष्ट दूर हो जाते हैं और उनके मन पर पड़े हुए तरह-तरह के भ्रम व सन्देह दूर हो जाते हैं। ऐसा सद्गुरु बाहरी कर्मकाण्ड, तीर्थ, व्रत, पूजा-पाठ इत्यादि में न लगाकर उन्हें अन्तर्मुख होने की सहज विधि बतलाता है और यह विधि है सुरत शब्द योग की। जैसे सन्तवाणी में लिखा है-

शब्द

शब्द बिना सारा जग अन्धा,
काटे कौन मोह का फन्दा।
शब्द ही सूर शब्द ही चन्दा,
शब्द कमावे मिलै आनन्दा।।

ताते शब्द ही शब्द कमाओ,
शब्द बिना कोई और न धाओ।
शब्द भेद तुम गुरु से पाओ,
फिर शब्द में जाय समाओ।।

अर्थात् वह जीव को यह ज्ञान देता है कि वह कहां से आया है और मरने पर वह कहां जाएगा? इन्सान की ''मैं'' जो उसके शरीर रहने पर रहती है यानी उसका अस्तित्व जो शरीर में स्थित है, वह परमात्मा का ही बून्द रूप में एक छोटा सा अंश है जिसे सन्तों ने सुरत

कहा है। जब तक मन के अन्तर से तरह-तरह के विचार, भाव, रूप, रंग आदि निकलते रहेंगे और वह उन्हें सत्य मानता रहेगा तो उसे चैन नहीं आएगा। क्योंकि पैदा हुआ विचार, भाव, रूप आदि सदा न रहेगा, कुछ समय के बाद वह टूट जाएगा। जब गुरु द्वारा बताए गए ज्ञान से उसे समझ आ जायेगी कि मन से उठने वाले संकल्प-विकल्प सत्य नहीं है, ये केवल भासते हैं तो उसकी सुरत मन के मण्डल से आगे निकल जायेगी और अपने अन्तर प्रकाश रूपी आत्मा के दर्शन करेगी, लेकिन यह प्रकाश भी सभी को नजर नहीं आएगा। प्रकाश का दर्शन अधिकतर उन्हीं लोगों को होता है जिनका ब्रह्मचर्य कायम है। मेरी सुरत अन्तर में प्रकाश के मण्डल में नहीं ठहरी अपितु गुरु कृपा से मैं पहले ही दिन शब्द की धार में चला गया और यह शब्द ही ब्रह्म है। जब उसकी प्राप्ति हो जाती है तो शान्ति मिल जाती है। यही मनुष्य का निज रूप है ओर यही सन्तों का सारांश है।

लेकिन यह सब बातों से नहीं आयेगा। करनी वा रहनी से आयेगा। सुरत का शब्द और प्रकाश को सुनना और देखना ही करनी है और इस करनी से फिर रहनी आ जाती है-

करनी करे सो पूत हमारा, कथनी कथे सो नाती।
रहनी रहे सो गुरु हमारा, हम रहनी के साथी।।

जिस महापुरुष की ऐसी रहनी है वही वास्तव में सच्चा गुरु है और वही शिष्यों को यह सच्चा भेद दे सकता है इस अवस्था में रहने वाले महापुरुष की संगत और प्रेम करने वालों को फायदा होता है क्योंकि इस संसार में रेडियेशन (विकिरण धारा) का नियम काम करता है। इसलिए स्थायी शान्ति की प्राप्ति के लिए मनुष्य को किसी परम शान्त व वीतराग पुरुष का सतसंग व ध्यान करना चाहिए। वीतराग

पुरुष वह है जो तन, मन व आत्मा के बन्धनों से अलग है। ऐसे सतगुरु के उपदेश से हमको यह पता लग जाता है कि हम कहां से आए हैं और कहां को जाना है? हम ब्रह्म और पारब्रह्म से आए हुए हैं या शब्द और प्रकाश से आये हुए हैं अथवा अनामी गति से आए हुए हैं और इसी गति में हम सबको समा जाना है। अर्थात् मनुष्य उस परम तत्व का एक अंश है क्योंकि जब वह कारण रूप में होता है तो कोई इसको जान नहीं सकता है। तब वह अकह, अपार, अगाध, अनामी है। जब वह जाग्रत, स्वपन और सुषुप्ति में होता है तब वह सत कहलाता है और जब वह भ्रम या माया में आ जाता है तब वह जीव कहलाता है। मन से उठने वाले संकल्प-विकल्प व कल्पनाएं ही माया है जिनको वह सत मानता है और यह सत मानना ही सुख-दुख का कारण व आवागमन का कारण बन जाता है। तब कबीर साहब कहते हैं -

नाना भेष बनाय सभी मिल, ढूंढ फिरे चहुं देश।
कहै कबीर अन्त नहीं पायो, बिन सतगुरु उपदेश।।

फिर ऐसी स्थिति में सतगुरु क्या ज्ञान होता है? कबीर साहब के शब्द में देखिए -

तेरी काया नगर में हीरा, भाई हेरां तैं पावेगा।
तेरे मोह का जाल जंजीरा, कोई सतगुरु सुलझावेगा।।

ऐसा नान्हा रहियो रे, जैसी नान्हीं दूब।
और घास जल जाएगी रे, दूब रहेगी खूब।
फिर चौमासा आवेगा।।

जैसे शीशी काँच की रे, यूँ मानष की देह।
भजन करै तो उभरै, नहीं खेह की खेह।
फिर अवसर नहीं पावेगा।।

सुरत भजन में लाईले रे, ज्यों चकरी में डोर।
भक्ति ऐसी कीजिए रे, जैसे चन्द चकोर।
भेद कोई भेदी लावेगा।।

मन के मते ना चालिए रे, मन है पक्का दूत।
ले डूबे दरियाव में, फिर जाय हाथ से छूट।
जीव पर जाल गिरायेगा।।

भक्ति ऐसी कीजिए रे, जैसी करी कबीर।
जला नहीं और गड़ा नहीं रे, वाका अमर हुआ शरीर।
पोहप गन्ध पुष्प समायेगा।।

सच्चा सतगुरु एक डॉक्टर की तरह काम करता है। जैसे एक डॉक्टर रोगी के शरीर की जांच कर उसके रोग को जानकर उसे उचित दवाई देकर उसे ठीक कर देता है उसी प्रकार अनुभवी गुरु जीव को देखकर उसके विचारों को जानकर जिसमें उसकी सुरत उलझी हुई है उससे, ज्ञान के द्वारा उसे बाहर निकाल देता है।

प्रत्येक धर्म सम्प्रदाय तथा पंथ वाले उस मालिक को अपने मन से अलग समझकर उसको पूजते हैं। कोई कहता है अन्तर में राम के दर्शन होते हैं और कोई अपने अन्तर सूर्य चन्द्रमा तथा देवी-देवताओं तथा अपने गुरु का रूप देखते हैं और उसे सत्य मानते हैं। दुनिया उनको सन्त सतगुरु वक्त मानती है जिनका रूप इनके अन्तर में प्रकट होता है और कोई गुरु इनको इस चक्र से निकालने वाला दिखाई नहीं पड़ता। जीव बुरी तरह से इस काल और माया के जाल में फंसा

हुआ है। मेरे गुरु महाराज पं. फकीरचन्द जी पहले ऐसे महापुरुष हुए हैं जिन्होंने इस रहस्य का पर्दाफाश किया है और अब मैं जगह-जगह सत्संग द्वारा तथा पुस्तकों द्वारा यह ज्ञान दे रहा हूँ कि यह जितने भी अन्तर में रूप, रंग, दृश्य नजर आते हैं ये सब अपने ही काल रूपी मन की रचना है। यह बात मैं निश्चय के साथ इसलिए कह रहा हूँ कि मेरा रूप जगह-जगह सत्संगियों के अन्तर में प्रकट होकर उनकी सहायता करता है और किन्हीं के अन्तर अन्तिम अवस्था में प्रकट होकर ले जाने का सन्देश देता है और मुझे इसका ज्ञान नहीं होता तो इससे यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक मनुष्य का मन अपने-अपने विश्वास के अनुसार अपने अन्तर में यह रचना करता रहता है और हमको भरमाता रहता है। वास्तव में यह रचना उस अकाल, अनामी व दयाल पुरुष का प्रतिबिम्ब है और हम उस अकाल या दयाल पुरुष के अंश है। इस भ्रम को दूर करने के लिए परम सन्त सतगुरु का रूप धारण करके जीवों को अपने घर का भेद देता है। इसलिए असली पूजा सतगुरु की है क्योंकि वह हमको हमारी असलियत का पता देता है। गुरु पूजा केवल मत्था टेकना, फूल चढ़ाना और भेंट चढ़ाना ही नहीं है अपितु उसकी बात को सुनना, गुनना और अमल करना ही गुरु की असली पूजा है।

लेकिन यह पूजा भी उस गुरु की की जाए जो रहस्य ज्ञाता हो। आजकल के जितने महापुरुष, गुरु, पीर हैं वो अधिकतर गीता, भागवत, राम-नाम, कुरान शरीफ या शास्त्रानुसार आत्मिक अवस्था का प्रचार कर रहे हैं। हालांकि ये सब मानव जाति के कल्याण व सुख-शांति के लिए प्रचार कर रहे हैं लेकिन यह बात कोई नहीं बता रहा है कि इन्सान को जो कुछ मिलता है वह उसकी अपनी लग्न, श्रद्धा, विश्वास या कर्म के अनुसार मिलता है। कोई साधु-महात्मा,

देवी–देवता किसी को कुछ नहीं दे सकता है और न ही किसी में कुछ देने की शक्ति है। सारी दुनिया भेड़चाल में है। देखा–देखी में लोग गुरु धारण कर रहे हैं ओर गुरु चेलों से मान–सम्मान व सेवा ले रहे हैं। इसीलिए कबीर ने कहा है –

सब जग रोगिया हो, जिन सतगुरु वैद न खोजा।
सीखा सीखी गुरुमुख हुआ, किया न तत्व विचारा।
गुरु चेला दोउन के सिर पै, जम मारे पैजारा।।

झूठे गुरु को सब कोई पूजै, साचे ना पतियाई।
अंधे बाँह गही अन्धे की, मारग कौन दिखाई।।

अर्थात् जो शिष्य गुरु धारण करके इस ज्ञाना को प्राप्त नहीं करता और गुरु अपने शिष्य को सही ज्ञान नहीं देता तो इन दोनों के सिर पर यम जूते मारता है। भाव यह है कि ऐसी स्थिति में न शिष्य को शान्ति मिलती है और न गुरु को। यह संसार उस परम पुरुष का खेल है। जिस–जिस जीव की जैसी प्रकृति व स्वभाव है वह वैसा खेल खेलने को मजबूर है, जो होना है वह होकर रहेगा। यह दुनिया जैसी है वैसी ही रहेगी। बस अपना खेल सुन्दर खेलो और अपने निज रूप का अनुभव करके उसमें समाने का प्रयास करो। यही गुरुमत है।

बाहर के गुरु का यही कर्त्तव्य है कि वह जीवों के कल्याण के लिए उन्हें आशावादी विचार देता रहे, उनके भ्रम को दूर करके सच्चा मार्ग दर्शन करता रहे। और जब जीव को यह ज्ञान हो जायेगरा कि यह सब खेल काल और माया का है, यह देश उसका नहीं है, जहां वह रह रहा है। असलीयत में वह देश कोई और है, जहां से वह आया है, फिर उसके सब कष्ट दूर हो जायेंगे और वह निर्भय हो जायेगा और धीरे–धीरे अपनी मंजिल पर पहुंच जायेगा। लेकिन पहुंचेगा वही जिसमें

चाह, लग्न व तड़फ हो और जो अपने कर्मों के ढंग या रूझान को बदलकर अपनी इच्छा या संकल्प शक्ति में दृढ़ता पैदा कर ले। जैसा इस शब्द में कहा है –

राम मिला महबूब मिला, आपा खोजे राम मिला।
जब लग मैं तब हरि नाहि, मैं मिटी हर आप हुआ।।

हम ने जिन से प्रीत करी थी, साहेब मुख से ना बोला।
इन से तोड़ करी सतगुरु से, साहेब पर्दा तब खोला।।

अचरज एक सुना भाई साधो, बूंद में समुन्द समाय रहा।
धरन गगन जिन दोनों छोड़ी, सबसे आगे जाय रहा।।

नाथ गुलाब गुरु मिलै पूरे, मोह कपट सब भ्रम गया।
भानी नाथ शरण सतगुरु की, अमरापुर में बास हुआ।।

रविदास ने भी ऐसे सतगुरु की महिमा का बखान किया है जो जीव के भ्रम को दूर कर उसकी सुरत को उसके अन्तर में ही स्थित कर दे। जैसे –

शब्द

मेहर हुई घर पाया गुरु की, मेहर हुई घर पाया।
वो घर अकह अजर अविनाशी, सन्त समझ लख पाया।।

पांच पच्चीशों तीन तेतिसों, उलट एक घर लाया।
पांचों प्राण उलट दस पवना, बेगम शहर बसाया।।

हंस मिले सुख सागर, मान सरोवर न्हाया।
न्हाय धोय कर निर्मल हो बैठा, अखै वृक्ष की छाया।।

दर्शा पूर्ण ब्रह्म अखण्डित, कर्म धर्म निरदाया।
गैबी पुरुष सुन्न से आगे, सत में जाय समाया।।

सन्तो सैन समझकर गाई, गाफिल नर भरमाया।
कहै रविदास लखों आपे को, दुई का खोज मिटाया।।

इस प्रकार ऐसे सतगुरु इस संसार में आकर जीवों का कल्याण करने के लिए बार–बार उन्हें चिताते हैं कि ऐ मानव! तेरा परमात्मा तेरे अन्तर में ही विराजमान है, उसे खोजने के लिए तुझे बाहर जंगल या तीर्थ में भटकने की कोई जरूरत नहीं है ओर न ही उसे पाने के लिए कोई वेश बदलने की जरूरत है, बस जरूरत है केवल अपने आपको पहचानने की। जैसे –

हंसा सुधि कर अपने देसा।
इहां आई तोरी सुधि बुद्धि बिसरी, आनि फंसे परदेशा।
अबहुं चेतु हेत करु पिया से, सतगुरु के उपदेशा।।

जौन देश से आये हंसा, कबहूं न कीन्ह अन्देशा।
आई परयो तुम मोहफन्द में, काल गहयो तेरा केसा।।

लायो सुरत अस्थान अलख पर, जो को रटत महेशा।
जुगन जुगन की संशय छूटे, छूटै काल कलेसा।।

का कहि आयो कहा करत हौ, कहूं भूले परदेसा।
कहैं कबीर वहां चला हंसा, जन्म न होय हमेशा।।

लोक-परलोक का सुख

यह लोक जिसमें हम जी रहे हैं, संकल्प व विचारों का है। जिसके जैसे विचार व ख्याल होते हैं वैसी ही उसकी दुनिया बन जाती है। जब ये विचार गहरे होते हैं तो वे उसके कर्म बन जाते हैं और मनुष्य अपने ही शुभ और अशुभ विचारों, कर्मों या संस्कारों का फल यहां भोगता है। इस कर्म गति पर एक शब्द पढ़िए-

सब भोगें बारम्बार, अवश्य फल कर्म किए का।
यह सोच समझ चित धार, मर्म जग जन्म जिये का।।

सुर नर देवी देव महर्षि, और ब्रह्म अवतारा।
अशुभ कर्म के फल से, इनको मिले नहीं छुटकारा।।

एक जो कहिये राम महाप्रभु, पुरुषोत्तम मर्यादा।
गुप्त घाट सरजू जल डूबे, रामायण सम्वादा।।

दूजे कहिये कृष्ण विवेकी, सोलह कला के पूरे।
यदुकूल नाश भील की गांसी, भये मान मद चूरे।।

तीजे युधिष्ठिर धर्मराज की, अकथ अपार कहानी।
भाई भारजा संग गले हिम, सो सब कोई जानी।।

चौथे वशिष्ठ महामुनि ज्ञानी, देखा कुल का नाशा।
विश्वामित्र के हाथ पलट गया, ज्ञान योग का पासा।।

पंचम दशरथ अवध नरेशा, श्रवण ऋषि को मारा।
पुत्र वियोग प्राण को त्यागा, मिला न राम सहारा।।

छठे इन्द्र की करनी समझो, शाप बृहस्पति दीना।
भग मय देवराज की काया, कर्म का फल यह लीना।।

चन्द्र कलंकित काम वेग से, जाने सब संसारा।
करम अटल है महाबली है, कोई-कोई करे विचारा।।

रावण बालि भरत जड़ ज्ञानी, ऋषि के सुत दुर्बासा।
कर्म किया तैसा फल पाया, अन्त में भये उदासा।।

सुन प्रसंग चित अपना सोधो, सोधो मन कर्म बानी।
शब्द योग कर जन्म बनाओ, राधास्वामी की सहदानी।।

अर्थात् हर मनुष्य चाहे बड़ा हो, चाहे छोटा, कर्म के फल से बच नहीं सकता है। शुभ या अशुभ कर्मों का फल सब भोगते आये हैं और अब भोग रहे हैं। यह मनुष्य चेतन का एक बुलबुला है जो इस शरीर में आकर खेल करता है। जब तक उसको अपना ज्ञान नहीं होता वह सुख-दुख के प्रभावों से बच नहीं सकता। यह केवल साधारण मनुष्य की बात नहीं है जितने भी मनुष्य शरीर धारण करके इस संसार

में आए हैं चाहे वह महात्मा हो, चाहे वह डॉक्टर हो, चाहे वह राजा हो, चाहे वह वैज्ञानिक हो या कोई और हो, कोई भी इस शरीर व मन के दुखों से बचा नहीं है। मैं 1962 से सतसंग का काम करता आ रहा हूँ। सत्संगी भाई-बहन संसारी इच्छा लेकर मेरे सतसंग में आते रहते हैं। कोई सन्तान के अभाव में दुखी है तो कोई नौकरी के अभाव में। कोई मुकदमे से परेशान है तो कोई किसी अन्य विचार से दुखी है। अर्थात् हर मनुष्य यहां किसी न किसी अभाव या रोग से दुखी है। मैंने 17 साल की आयु से लेकर अब तक बड़े-बड़े अधिकारियों की संगत से यही महसूस किया है कि यहां बड़े-बड़े दिखने वाले लोग भी सुखी नहीं है।

बड़े-बड़े जो दीखै लोग, उनको व्यापै चिन्ता रोग।
तन धर सुखिया कोई न देखा, जो देखा सो दुखिया हो।

इसका कारण अपने अनुभव के आधार पर मैं यही समझा हूँ कि यहां कोई किसी को सुख-दुख देने वाला नहीं है। सभी मनुष्य अपने ही शुभ-अशुभ कर्मों का फल भोगने यहां आते हैं। जैसे महर्षि शिवव्रत लाल जी की वाणी में कहा है -

कोई सुख दुख का नहीं दाता, तेरी है भूल सब।
कर्म अपने करते हैं, अनुकूल और प्रतिकूल सब।।

कर्म की परधानता की, क्या नहीं तुझको समझ।
कर्म से आनन्द है और, कर्म ही से सूल सब।।

यह जगत है वाटिका, करते हैं प्राणी आके काम।
कर्म के अनुसार इनके, कांटे हैं और फूल सब।।

जो ठगेगा वह ठगा, जायेगा निस्सन्देह आप।
प्रेमीजन ही पाते हैं, और प्रेम के बहुमूल सब।।

अपनी करनी आप भरनी, पड़ती है संसार में।
अपने घर की आप उठाया, करते ही हैं चूल सब।।

किस भरम में तू पड़ा, औरों की बातें छोड़ दें।
काम में लग अपने कर ले, कर्म निज अनुकूल सब।।

सत नाम भज, झगड़ों से बच कर रह सदा।
जो नहीं समझा तो, पढ़ना लिखना होगा धूल सब।।

तो मनुष्य के लिए इन दुखों से बचने का उपाय यही है कि वह किसी महापुरुष की शरण में जाए और सत्संग से बात को समझ लें और ध्यान योग की विधि से अपनी सुरत को शरीर व मन से ऊपर ले जाए, क्योंकि विचार मन के मण्डल तक ही रहते हैं। जब यह सुरत शरीर व मन से ऊपर निकल जाती है तो मनुष्य शरीर व मन के दुखों से मुक्त हो जाता है लेकिन जब तक सुरत उस अवस्था में रहती है तभी तक वह मुक्त है। शरीर में आने पर तो बाहर की दुनिया का कम या ज्यादा प्रभाव पड़ता ही है।

कहने का भाव यह है कि जब मनुष्य किसी अनुभवी महापुरुष की शरण ले लेता है तो उसका लोक व परलोक दोनों सुधर जाते हैं, क्योंकि सतगुरु उसे इस लोक को सुखी व सुन्दर बनाते हुए परलोक बनाने की सहज विधि बताता है। इस लोक को सुन्दर बनाने के नियम

कुछ और हैं तो उस लोक के कुछ और। इस लोक को सुन्दर बनाने के लिए मनुष्य को कल्याणकारी, शिव संकल्प व सुन्दर विचार रखने पड़ते हैं तो परलोक जाने के लिए सभी विचारों को छोड़ना पड़ता है।

इस लोक के सुख के लिए घर में शान्ति का होना बहुत जरूरी है। अत: घर-गृहस्थी में एक-दूसरे से मिलजुल कर, प्रेम-प्यार व सहयोग से सुख-शान्ति से जीवन बिताना चाहिए। जैसे कहा-

घर सुख बसिया तो बाहर सुख पाया।
कहे नानक गुरु मन्त्र दिलाया।।

घर में माँ-बाप व बड़े-बुजुर्गों की सेवा करनी चाहिए व उन्हें खुश रखना चाहिए। यदि हम उनका दिल दुखाते हैं तो हम कभी सुखी नहीं हो सकते हैं, क्योंकि हम उनके ऋणी है। हमेंशा दूसरों के साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिए जैसा आप अपने लिए चाहते हैं। यदि मान-सम्मान चाहते हो। तो दूसरों को मान-सम्मान दो, यदि प्रेम चाहते हो तो प्रेम करो, सेवा चाहते हो तो सेवा करो क्योंकि यह सिद्धान्त है कि जो दूसरों को दोगे, वही आपको मिलेगा। जहां तक हो सके, अपनी आय से ज्यादा खर्चा न करो ओर कर्जे से बचो।

अपने शरीर व मन की संभाल करते रहना चाहिए। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए सुपाच्य, हल्का व भूख से कम भोजन करना चाहिए। शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए, क्योंकि ब्रह्मचर्य की शक्ति ही उसका जीवन है जिससे मनुष्य अपना जैसा मनुष्य उत्पन्न कर सकता है। जो मनुष्य इस शक्ति को अपने स्वाद के लिए कामवासना में खो देते हैं, वह बहमी व रोगी हो जाते है। शरीर की तरह मन को भी सम अवस्था में रखना अत्यंत आवश्यक है। इस मन को हर समय किसी न किसी काम में लगाए रखना चाहिए,

क्योंकि मन से उठने वाले विचारों में बड़ी शक्ति है। इसलिए जहां तक हो सके आशावादी व सुन्दर-सुन्दर विचार रखने चाहिए, क्योंकि ये विचार ऊपर ब्रह्माण्ड में जाकर फिर वहां से वापिस आते हैं और जिसके जैसे विचार होते हैं वैसे ही वे उसे लाभ या नुकसान पहुंचाते रहते हैं। मनुष्य अनजाने में यहां भला-बुरा सोचता रहता है और उसका फल यहां भोगता रहता है।

जब मनुष्य इन सांसारिक दुखों से तंग आ जाता है तो वह किसी ऐसी जगह या ऐसे महापुरुष के पास जाना चाहता है जहां उसको इन दुख-तकलीफों से छुटकारा मिल सके। लेकिन आजकल इस धर्म में भी पाखण्ड का जाल बिछा हुआ है। लोग साधु का भेष तो बना लेते है लेकिन अपने मन को पवित्र नहीं करते। यहां किसी को डेरा, आश्रम, बनाने की चिन्ता है तो किसी को चेला व धन इकट्ठा करने की फिक्र है। ऐसे लोग खुद भी डूबते हैं और दूसरों को भी डुबाते हैं। तो ऐसी स्थिति में साधारण मनुष्य के लिए यह तरीका है कि वह हमेंशा यह विचार रखे और मालिक से प्रार्थना करे कि मुझे कोई पूर्ण महापुरुष मिले जिससे मेरी यह दुनिया सुन्दर बन जाए और मैं इसी जीवन के रहते अपने निज रूप का अनुभव कर लूं। बस यह विचार आपका काम बना देगा, क्योंकि यह लोक ही विचारों का है। 'जहां चाह, वहां राह'। जैसे मेरे धर्म कर्म के कोई संस्कार नहीं थे। मुझे सेना में सूबेदार पद के रहते धर्म चन्द डोगरा नाम के सूबेदार से धर्म का यह संस्कार मिला कि वह रात को बैठकर भजन करता है और फिर मेरे मन में इस भजन को जानने की सच्ची चाह उत्पन्न हो गई जिसके फलस्वरूप मैं कई महापुरुषों से मिलने के पश्चात् अन्त में पंजाब के होशियारपुर जिले में पंडित फकीरचन्द जी महाराज के पास पहुंच गया ओर वहां

पहुंचने पर उनके यह कहने पर कि धर्म विश्वास का विषय है, मैं उन पर विश्वास करके आँख बन्द करके बैठ गया। वह हमेशा सहज समाधि में रहते थे। मेरे आँख बन्द करके बैठते ही उनकी Radiation से मेरे मस्तिष्क के अन्तर में ऊपर की ओर खिंचाव होकर Internal Voice या शब्द की धार प्रकट हो गई। पूछने पर उन्होंने बताया कि यही वह नाम या भजन है जिसे आप जानने के लिए आए हैं। जब समय मिले यह अनुभव कर लिया करें। एक दिन समय आने पर आपका काम हो जायेगा। इस प्रकार उन्होंने दया व कृपा करके अपनी वाणी व अन्तर के गुरु शब्द से 10–15 मिनट के समय में ही मेरा मार्गदर्शन कर दिया। यह है जीवित अनुभवी मुक्त पुरुष की संगत का कमाल। जेसे कबीर साहब ने गुरु की महिमा के बारे में लिखा है –

सतगुरु मिले म्हारे सारे दुख बिसरे,
अन्तर के पट खुल गये जी।
ज्ञान की आग लगी घट अन्दर,
कोटि कर्म सब जल गये जी।।

पांच चोर लूटैं थे निश दिन,
आप ही आप वह टल गये जी।
गगन मंडल में अमीजल बरसे,
अष्टकमल दल खिल गये जी।।

अड़सठ तीर्थ है घट भीतर,
आपस में रल मिल गये जी।
बिन दीपक म्हारे होया चान्दना,
तिमिर कहां को नश गये जी।।

कोटि भानु म्हारे होया उजियारा,
और ही रंग बदल गये जी।
त्रिवेणी धार छुटी घट भीतर,
अमी के कुण्ड उजल गये जी।।

कहे कबीर सुनो भाई साधो,
नीर में नीर मिल गये जी।।

इस प्रकार जो मनुष्य ऐसे महापुरुष के शरणागत हो जाता है और उसके वचनों पर भरोसा रखता है तो उसका यह जीवन सुख-शान्ति का हो जाता है। परन्तु उसे केवल एक रूप को ही मानना चाहिए क्योंकि 'एक ही साधे सब सधै, सब साधे सब जाए।' वैसे यह सब खेल व लीला करने वाला परमात्मा अंश रूप में मनुष्य के अन्दर ही स्थित है लेकिन वह उसे भूला रहता है। जैसे -

खुदा के पास होने का यकीं मुश्किल से आता है,
वरना जब खुदा ही पास है तो बेकशी कैसी।
''भानु रूप मालिक सुन भाई, हर हिरदे में रहा समाई।''

अध्यात्म ज्ञान में महात्माओं ने परमात्मा को बहुत से नामों से पुकारा है। वैसे परमात्मा का कोई नाम नहीं है और सभी नाम उसके हैं परन्तु यह लोक नाम और रूप का है। अतः जिस प्रेमी भक्त या खोजी ने जिस नाम से उसको पुकारा है वह ठीक है। सन्तों ने उसे गुरु नाम से पुकारा है। जैसे -

गुरु मध्य आदि अन्त अद्भूत, अमल अगम अगोचरम्।
विभु विरज पार अपार निर्गुन, सगुन सत्य विशेश्वरम्।।

जेहि मत लखे नहीं गति लखे, सो शुद्ध तत्व विचार है।
जो चरन कमल की ओट आया, भव से बेड़ा पार है।।

गुरु विष्णु मूरत शिव की मूरत, गुरु को ब्रह्मा जान तू।
गुरु ब्रह्म है परब्रह्म है, यह सोच समझ के मान तू।।

कर गुरु की संगत रात दिन, नर जन्म अपना सुधार ले।
दे फेंक माया बोझ सिर से, यम का सीस न भार ले।।

सीस दे तन मन को दे, गुरु भक्ति रतन अमोल ले।
फकीर दयाल भेद बताये तुझको, हिये तराजू तोल ले।।

यहां जितने भी ऋषि-मुनि, पीर-पैगम्बर आए, सभी ने मनुष्य को शारीरिक, मानसिक व आत्मिक जीवन में जीने के नियम बताए जिससे मनुष्य इस संसार में सुखी जीवन जी सके। मैंने भी गुरु आज्ञा से प्रवृत्ति मार्ग यानी इस लोक को सुन्दर बनाने के ही अधिक सत्संग दिए हैं क्योंकि जैसी संगत या सत्संग सुनने वाले होते हैं, उनकी आवश्यकतानुसार ही मेरे मुंह से सहज वचन निकलते रहते हैं। मैंने पुस्तक पढ़कर कभी सत्संग नहीं दिया। वैसे मैंने अपना अधिकतर जीवन सहज समाधि में रहते हुए सन्त मत की मुक्त अवस्था या समस्थिति में रहते हुए आनन्द, खुशी व बेफिक्री से जीया है और जी रहा हूँ। आगे की कुछ नहीं कह सकता।

अब रही परलोक के सुख की बात। यह परलोक का सुख उनके लिए है जिन्हें इस संसार में रहते-रहते वैराग हो गया है और जो हमेंशा के लिए अमर होकर स्थायी शान्ति या मुक्ति पद के इच्छुक है।

मुक्ति पद का मार्ग विचारों से ऊपर शब्द प्रकाश का है। यह परलोक, अगम लोक या शान्ति का लोक मनुष्य के अन्तर में ही स्थित है जिसे इन बाहरी ज्ञानेन्द्रियों से नहीं देखा जा सकता, अपितु सुरत के द्वारा उसका अनुभव किया जा सकता है। उस लोक में मनुष्य को सुख-दुख, पाप-पुण्य कुछ भी नहीं व्यापते हैं। वहां न यह नर-रचना है और न सूर्य चाँद। कबीर साहब ने उस लोक को इस शब्द में इस प्रकार बताया है -

सखिया वा घर सबसे न्यारा, जहां पूरन पुरुष हमारा।

जहां नहिं सुख-दुख, सांच-झूठ नहिं, पाप न पुन्न पसारा।
नहिं दिन रैन चाँद नहीं सूरज, बिना ज्योति उजियारा।

नहिं तहं ज्ञान ध्यान नहिं जप तप, वेद कितेब न बानी।
करनी धरनी रहनी गहनी, यह सब वहां हिरानी।।

धर नहिं अधर न बाहर भीतर, पिण्ड ब्रह्माण्ड कुछ नाहीं।
पाँच तत्व गुन तीन नहीं तहं, साखी शब्द न ताहीं।।

मूल न फूल बेलि नहिं बीजा, बिना वृच्छ फल सोहै।
ओऊं सोहं अर्ध उर्ध नहिं, स्वासा लेखन कोहै।।

नहिं निर्गुन नहिं सर्गुन भाई, नहिं सूच्छम अस्थूल।
नहिं अच्छर नहिं अवगत भाई, ये सब जग के भूल।।

जहां पुरुष तहवां कछु नाहीं, कहै कबीर हम जाना।
हमरी सैन लखै जो कोई, पावे पद निरवाना।।

यहां कबीर के भाव का तो मुझे पता नहीं, लेकिन मेरे अनुभव के अनुसार यह वह निर्वाण अवस्था है जहां मैं या मेरी सुरत देह व मन से परे शब्द प्रकाश को छोड़कर, अपनी चेतनता या 'है' पने को छोड़ जाती है। यही हमारी आदि अवस्था है। यह सारा संसार उसी अवस्था से प्रकट है। हम सब उसी के रूप हैं। शब्द और प्रकाश हमारी आत्मा का स्वरूप है, जहां सुरत आनन्द लेती है। हमारा असली निज रूप इससे परे है। फिर वह मालिक क्या है? अकह, अपार, अगाध और अनामी।

शब्द प्रकट तब धरिया नाम।
शब्द गुप्त तब रहा अनाम।।

वैसे प्राकृतिक रूप से हर मनुष्य इस स्थान का हर रोज अनुभव करता है। जैसे मनुष्य दिनभर काम करके थक जाता है तो रात को भोजन करके जब वह गहरी नींद में चला जाता है तो उसकी सुरत अपने निज घर पहुंच जाती है और सुबह उठकर वह फिर काम में लग जाता है। अब रात को वह कोई मक्खन, घी या टॉनिक तो नहीं खाता है। वह यह शक्ति उसी निज घर या परमात्मा से लेकर आता है और फिर पूरे दिन काम करता है। यदि दो-चार दिन गहरी नींद न आए तो दिमाग का सन्तुलन बिगड़ जाता है फिर डॉक्टर नींद आने की दवा देते हैं ताकि मनुष्य की सुरत प्राकृतिक रूप से गहरी नींद में जाने लगे।

मनुष्य सुरत शब्द योग का साधन करके अपने निज रूप का अनुभव तो कर सकता है परन्तु उस परमात्मा का जो एक बहुत बड़ी शक्ति है उसका ज्ञान यह मनुष्य की सुरत नहीं कर सकती है क्योंकि

जब यह साधन में उस परमात्मा शक्ति का अनुभव करना चाहेगी तब उसी में लीन हो जायेगी, ऐसा मेरा अनुभव है। हो सकता है यह गलत हो, कोई दावा नहीं है।

जब मनुष्य की सुरत अपने अन्तर में रूप, रंग, रेखा या चाह को छोड़ देती है अर्थात् मन और देह के केन्द्र से ऊंची चली जाती है तो उस समय वह शब्द को सुनती है या शब्द ब्रह्म में प्रवेश करती है तो वह अजर अमर होने का पूर्ण निश्चय कर लेती है। सन्त वाणी में इस अमर पद को इस प्रकार कहा है –

अम्बर ऊपर डेरा डाले, अमृत पी पी तृप्ताय।

जीव न मरे न जग में आवे, आवागमन के फंद कटाये।
कर्म करे और बने न करता, अहं भाव चित में नहीं लाये।।

बन्ध निर्बन्ध न मुक्त न अमुक्त, इसकी महिमा वरणी न जाये।
हद बेहद दोनों से न्यारा, अगम अलख में बासा पाये।।

बसे खसे नहिं सगुन न निर्गुन, कोई कैसे कह कर समझाये।
रूप रंग रेखा नहीं उसमें, नाम अनाम का भेद मिटाय।।

ऐसा गुरुमुख गुरु का प्यारा, बिन बानी नित गुरु गुन गाये।
सतगुरु दया पात्र सोई सांचा, सांच झूठ का भरम नसाये।।

इस अवस्था तक पहुंचने के लिए बाहरी पूर्ण अनुभवी पुरुष की अत्यंत आवश्यकता है जो इस शरीर, मन, आत्मा और सुरत के भेद का ज्ञाता हो और स्वयं ऐसी रहनी में रहता हुआ जीवन गुजारता हो।

जो जीव को सब कुछ उसी के अन्दर होने का पूर्ण निश्चय या पूर्ण विश्वास करा दे उसी पुरुष का नाम सतगुरु है।

'घट में घट दिखलाय दे, वह सतगुरु चतुर सुजान।'

वह जो मालिक ऊपर रहता है, वह कोई सहायता नहीं करता। वह तो अजर, अमर, अटल व अविनाशी है। बाहरी सतगुरु ही जीव को ज्ञान देकर माया के चक्र से निकालने का सही रास्ता बताता है। इसलिए सन्त वाणी में सतगुरु की वन्दना की जाती है।

वन्दनम् सत ज्ञान दाता, वन्दनम् सत ज्ञान मय।
वन्दनम् निर्वाण राता, वन्दनम् निर्वाणमय।।

भक्ति मुक्ति योग युक्ति, आपके आधीन सब।
आप ही हैं सिन्धु सद्गति, जीव जन्तु मीन सब।।

आप गुरु सतगुरु दया, ओर प्रेम के भण्डार है।
आप कर्ता धरता हे, करतार जगदाधार है।।

ऋद्धि-सिद्धि शक्ति नौनिध, हैं चरण में आपके।
बच गया भव दुख से, जो आया शरण में आपके।।

भक्ति दीजे नाम की, सतनाम में विश्राम दे।
राधास्वामी अपना कीजे, राधस्वामी धाम दे।।

यह राधास्वामी क्या है? राधा आदि सुरत का नाम और स्वामी आदि शब्द पहचान। यह शब्द क्या है?

शब्द शब्द सब कोई कहे, वह तो शब्द विदेह।
जिभ्या पर आवे नहीं, निरख परख कर ले।।

शब्द भया तब जानिये, रहे शब्द के माहि।
शब्द से शब्द प्रकट भया, दूजा देखे नाहिं।

शब्द शब्द बहु अन्तरा, सार शब्द चित दे।
जा शब्द साहिब मिले, सोई शब्द गह ले।।

हमारे अपने है पने (सुरत) की गति से जो आवाज होती है इसी को विदेह शब्द कहा है। जहां गति होगी वहां शब्द या आवाज होगी और यही शब्द विदेह या सार शब्द के नाम से जाना जाता है। यही निज नाम है।

सन्तों का कथन है कि यह कुल रचना धारों की है और यह सुरत जिस धार से नीचे उतर कर आई है, उसी धार को पकड़ कर अपने निज लोक को जा सकती है। यह धार शब्द की है। अत: शब्द की धार पकड़ कर ही मनुष्य अपने निज रूप को जान सकता है। शब्द के बराबर और कोई पूरा गुरु नहीं है। नानकदेव व कबीर जी ने भी शब्द को गुरु माना है।

मंगलम् गुरु शब्द रूप, अनाम नाम प्रकाशनम्।
मंगलम् शब्दार्थ शब्दाधार, शब्द निवासनम्।।

गुप्त अपने आप में जब, अलख अगम अनाम आप।
जब प्रगट आनन्द ज्ञानाकार, अरु सतधाम आप।।

साज संत समाज मंगल, काज जीव उद्धार को।
आपने धारण किया है, परम सन्त अवतार को।।

आप है आधार सबके, आपके आधार सब।
वार पार से रहित आप है, और वारा पार सब।।

संग देकर सत का, सत संगत में जीव अधीन को।
सिंध सद्‌गति से मिलाया, जीव रूपी मीन को।।

सैन बैन का आसरा, सत् संग द्वारा दान दे।
शब्द योग सिखाया अनहद, धाम पद निरवाण दे।।

धन्य सतगुरु फकीर दयाला, पार भव से कीजिए।
भक्ति-मुक्ति योग-युक्ति, ज्ञान शक्ति दीजिए।।

सन्त मत में शब्द ही गुरु है। जैसे कबीर के शब्दों में -
गुरु हमारा गगन में, चेला है चित माहिं।
सुरत शब्द मेला भया, मुख की हाजत नाहिं।।

जिसने उसे जान लिया या जो शक्ति देह में इजहार कर रही है वह गुरु है।

लखनहार ने लख लिया, जाको है गुरु ज्ञान।
शब्द सुरत के अन्तरे, अलख पुरुष निर्वान।।

साधो सतगुरु अलख लखाया।
जब आप आप दरसाया।।

यह अलख क्या है? जिसकी सुरत या मैं इस शरीर, मन ओर

रूप, रंग व नजारों को छोड़कर शब्द और प्रकाश का रूप होकर ऊपर की खिंची रहती है इस स्थान का नाम अलख है जो लखा नहीं जा सकता, केवल अनुभव किया जा सकता है। यह खिंचाव तभी होगा, जब मनुष्य अन्तरमुखी होगा। जब तक वह इस स्थूल देह में है, वह अपने प्रारब्ध कर्मों, विचारों व ख्यालों में खेलता रहता है। कोई धन में आनन्द लेता है, कोई पुत्र व पत्नी में तो कोई किसी अन्य पदार्थों में। जब वह खेलते-खेलते थक जाता है या इन दुनियावी पदार्थों में धोखा खाता है तो वह अपने घर जाने के लिए कोई सहारा ढूंढता है और जब तक कोई उसे इस भेद को बताने वाला अनुभवी महापुरुष या सतगुरु नहीं मिलता, तब तक उसे शान्ति नहीं मिलती है। इसलिए इस परलोक सुख के अधिकारी वहीं है जो यहां अपना खेल खेलते-खेलते थक गए हैं या जिन्हें यह खेल झूठा लगने लगता है और जिन्हें वैराग हो गया है। ऐसी स्थिति में भाग्य से उसे कोई सतगुरु मिल जाता है तो वह उसे परलोक जाने की विधि बताता है। जैसे -

चलो री सखी आज पिया से मिलाऊं, तन-मन-धन की प्रीत छुड़ाऊं।
पुत्र कलत्र जाल छुड़ाऊं, सुन्न मण्डल धुन अजब सुनाऊं।।

गगन मण्डल पर जाय बैठाऊं, तीन लोक का राज दिलाऊं।
त्रिवेणी तीर्थ परसाऊं, मन माधो से खूंट छुड़ाऊं।।

काल चक्कर से तुरन्त बचाऊं, कर्म काट निज घर पहुंचाऊं।
महासुन्न और भंवर गुफा से, सत पुरुष दीदार कराऊं।।

दीन दूरबीन पुरुष एक ऐसी, अलख अगम के पार समाऊं।
राधास्वामी पद हम जाना, कहन सुनन का लगा ठिकाना।।

यहां पिया से मिलने का अर्थ परमात्मा से मिलना है और तन-मन-धन छोड़ने का अर्थ यह है कि यह सब परमात्मा की देन है अतः इनका सदुपयोग किया जाए। अर्थात् मनुष्य के पास जो कुछ भी भौतिक पदार्थ व उसका परिवार है, उसे अपना न समझकर परमात्मा का समझना। यह जब तक हैं, इनका आनन्द लो और किसी कारणवश न रहे तो अफसोस मत करो और दुखी मत होओ। बाकी अन्दर का योग रहस्य में बताया है। आखिर में कहा है सतगुरु की दूरबीन रूपी कृपा से यह सुरत साधन से सफर करते-करते अलख, अगम के पार जाकर अपने निज रूप शब्द में लय हो जाती है। यही राधास्वामी पद है। यानी यह सुरत जिसको राधा कहा है, यह जाकर अपने स्वामी परमात्मा में मिल जाती है। फिर 'न गुरु न चेला' बस खामोशी। यानी 'चिराग गुल पगड़ी गायब'।

तो जो हमारा निज या स्वस्वरूप शब्द है वही वह अवस्था है जो अजर व अमर है और जहां आवागमन नहीं है। यह आवागमन तभी होता है जब यह सुरत शब्द की धार को छोड़कर नीचे देह में आती रहती है और जब तक यह देह है इसका उत्थान होता रहता है। मैं अपने जीवन में इस स्थिति का अनुभव करता रहता हूँ। मेरी सुरत उस शब्द रूपी परमात्मा में लीन हो जाती है और फिर वहां से धीरे-धीरे उसका उत्थान होता रहता है और फिर चेतनता में आकर वह देह में आ जाती है।

मगर कोई भाग्यशाली व्यक्ति ही इस अवस्था तक पहुंच सकता है और वह भी तब जब उसे कोई रहस्य ज्ञाता गुरु मिले और वह उसे यह भेद बताए। जैसे कबीर साहब ने इस शब्द में कहा है-

मरहम होय सो जाने, साधो ऐसा देश हमारा।

वेद कतेब पार नहीं पावत, कहन सुनन से न्यारा।
जाति वरन कुल किरिया नाहीं, सन्ध्या नैम उचारा।।

बिन जल बूंद परत जहं भारी, नहिं मीठा नहीं खारा।
सुन्न महल में नौबत बाजै, किंगरी बीन सितारा।।

बिन बादल जहं बिजुरी चमकै, बिन सूरज उजियारा।
बिना सीप जहं मोती उपजै, बिन सुर शब्द उचारा।।

जोति लजाय ब्रह्म जहं दरसै, आगे अगम अपारा।
कहैं कबीर वहं रहनि हमारी, बूझै गुरुमुख प्यारा।।

'मरहम' कहते हैं जानकार या ज्ञाता को। यानी जो असलियत की समझ रखता हो। सन्तों ने उस देश में जाने के लिए सुरत शब्द योग का साधन आवश्यक बताया है। उस देश का यह सुरत अनुभव कर सकती है। वह देश प्रकाश और शब्द का है। सूरत की गति से शब्द उत्पन्न होता है। जिस प्रकार यहां स्थूल जगत में स्थूल प्रकृति की गति से शब्द होता है उसी प्रकार वहां प्रकाश की गति से शब्द होता है। केवल शब्द शब्द में अन्तर है। यहां स्थूल लोक में बादलों से बिजली चमकती है परन्तु वहां प्रकाश रूपी देश में बिना बादलों के रोशनी रहती है। 'बिना सीप जहं मोती उपजै' यह मोती हमारी सुरत है जो इस मानव देह में बन्द है। वहां सीप की आवश्यकता नहीं है। अर्थात् वहां यह सुरत बिना देह और मन के मौजूद है। 'जोति लजाय' का अर्थ यहां प्रकाश के दर्शन से है। वहां करोड़ों सूर्य जैसा प्रकाश है और इस सफेद प्रकाश को देखना व शब्द को सुनना ही ब्रह्म को देखना है। और

वहां उस लोक में पहुंचकर जब इस सुरत को ज्ञान हो जाता है कि मैं कौन हूँ और वह मालिक क्या है? तो इस ज्ञान का नाम अगम देश है। लेकिन यह ज्ञान बिना योग साधन के नहीं हो सकता है। वह योग है –

तन थिर मन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कहैं कबीर वा पलक को, विरला पावे कोय।।

जो दीखे सो है नाहीं, जो है वह कहा न जाई।
सैना वैना जो कोई बूझै, गूंगे का गुड़ खाई।।

इस प्रकार उस मालिक का अंश यह सुरत ही इस मनुष्य देह में आकर यह सब खेल करती है और फिर एक दिन अपने ही रूप में समा जाती है। उसका कोई नाम व रूप नहीं है। वैसे सब नाम रूप उसी के हैं। मनुष्य जब अपने देह के रहते इसी जीवन में ही इस सुरत शब्द योग से निज रूप का अनुभव कर लेता है तो फिर वह अपने प्रारब्ध कर्मों को भोगता है और केवल शरणागत का जीवन जीते हुए साक्षी भाव से परमात्मा की लीला देखता रहता है। इस जीवन का नाम ही जीवन्मुक्त है। इसे ही मोक्ष या निर्वाण कहा है। मरने के बाद वाली मुक्ति का मुझे कोई ज्ञान नहीं और न ही किसी ने आकर बताया है।

उतते कोई न आईया, जासे पूछूं धाय।
इतते सब कोई जाईया, भार लदाय लदाय।।

फिरा नहीं मुलके अदब से कोई कि पूछूं।
मुसाफिरों मंजिल पर क्या गुजरी।।

इस प्रकार इस पुस्तक में मैंने अपनी योग्यतानुसार अध्यात्म

ज्ञान का सार लिखने का प्रयास किया है और संक्षेप में वह सार यही है कि यह लोक विचारों का है इसलिए अपने भाव व विचारों को निर्मल, पवित्र रखते हुए, अपने हक हलाल की कमाई करो और फिजूल खर्ची से बचो। अपनी नीयत को शुद्ध रखो और अपने कर्त्तव्य का पालन करो। किसी देवी-देवता या गुरु-पीर को अपना इष्ट मानकर उस पर श्रद्धा व विश्वास रखो और इस लोक के नियमों का पालन करते हुए अपने इस दुनिया के जीवन को सुन्दर बनाओ। उसके बाद यदि सदा रहने वाली शान्ति चाहते हो तो किसी अनुभवी पूर्ण पुरुष की संगत करके उससे सहज योग की विधि सीखकर अपने निज रूप को जानने का प्रयास करो क्योंकि अपने आपको जानना ही अन्तिम दर्जा या अध्यात्म ज्ञान की सबसे ऊंची मंजिल है और जहां तक परमात्मा को जानने की बात है तो मेरे अनुभव के अनुसार वह तत्व बेअन्त है। मनुष्य की सुरत जब उसको जानने का प्रयास करेगी तो वह उसी में समा जायेगी। यानी वह अपना अस्तित्व ही उस परमात्मा तत्व में लय कर देगी। जैसे पानी की बूंद पानी में मिलकर उसी का रूप बन जाती है। फिर कौन उस परमात्मा तत्व की खोज करेगा? जैसे कहा है -

'आत्मा सो परमात्मा'

बस मनुष्य यहां अनुमान से यही कह सकता है कि आत्मा यदि एक बून्द पानी की है तो परमात्मा बहुत बड़ा पानी का सागर है और यदि परमात्मा एक बहुत बड़ा प्रकाश का सूर्य है तो यह मनुष्य की सुरत उस सूर्य की एक छोटी सी किरण है। यह अनुभव ज्ञान नहीं है क्योंकि अनुभव करने वाली यह सुरत जब शब्द रूपी सागर में सदा के लिए लीन हो जाए तब आगे चर्चा कोन करें। यानी 'चिराग गुल और पगड़ी गायब'।

उसकी लीला कौन जाने, वह तो अपरम्पार है।
एक दृष्टि उसकी से मानव का बेड़ा पार है।।

तूं तूं करता तूं भया, मुझ में रही ना हूँ।
वारी तेरे नाम की, जित देखूं उत तूं।।

इस पुस्तक के आदि में मैंने जो मंगलाचरण गुरु मूर्ति के रूप में किया है वह मेरे गुरु महाराज पं. फकीरचन्द जी के लिए किया है, जिन्होंने मनुष्य रूप में अवतार धारण करके मेरे इस संसार के सुखी जीवन का मार्गदर्शन किया और साथ ही अन्दर के गुरु का अनुभव कराकर सुरत शब्द योग का पथ प्रदर्शन किया।

दूसरा मंगलाचरण मैंने अन्दर के शब्द गुरु का किया है जिसके साधन से सहज ही मेरी सुरत ने अपने निज स्थान पर संसारी जीवन का आनन्द लेते हुए निज रूप का अनुभव कर लिया। ओर उसके पश्चात् गुरु आज्ञा से अपने प्रारब्ध कर्मों को भोगता हुआ, साक्षी भाव से परमात्मा की लीला को देखता हुआ, सहज समाधि में जीवन व्यतीत करता हुआ 1962 से यह सत्संग देने का काम करता आ रहा हूँ और अब इन पुस्तकों के द्वारा जन-जन तक यह सच्चाई फैलाने के लिए प्रयासरत हूँ ताकि मैं अपने गुरु के ऋण से उऋण हो सकूं।

(ॐ शान्ति शान्ति शान्ति)

अब तक प्रकाशित पुस्तकों की सूची

क्रम	पुस्तक का नाम	प्रथम सं०	द्वितीय सं०	तृतीय सं०	चतुर्थ सं०
1.	लाल कमल	1000 प्रतियां 4/03	2000 प्रतियां 8/05	4000 प्रतियां 12/06	4000प्रतियां 6/08
2.	सहज योग	2000 प्रतियां 8/03	3000 प्रतियां 8/05	4000 प्रतियां 7/07	4000प्रतियां 1/09
3.	सुखी जीवन का रहस्य	3000 प्रतियां 10/03	4000 प्रतियां 8/05	4000 प्रतियां 2/07	4000प्रतियां 1/09
4.	मानव धर्म व अध्यात्म ज्ञान	4000 प्रतियां 1/04	4000 प्रतियां 9/05	4000 प्रतियां 3/08	
5.	मानव जीवन का सुखमय सफर	4000 प्रतियां 3/04	4000 प्रतियां 9/05	4000 प्रतियां 3/08	
6.	मनुष्य का कर्त्तव्य और धर्म	4000 प्रतियां 6/04	4000 प्रतियां 2/07	4000 प्रतियां 7/08	
7.	प्रश्नोत्तरी ज्ञान गंगा	4000 प्रतियां 10/04	4000 प्रतियां 2/07	4000 प्रतियां 7/08	
8.	मेरी धार्मिक खोज	4000 प्रतियां 5/05	4000 प्रतियां 10/05	4000 प्रतियां 7/08	
9.	Secret of Happy Life	2000 प्रतियां 4/05	4000 प्रतियां 2/07	---	
10.	ज्ञान योग	4000 प्रतियां 4/06	4000 प्रतियां 9/07	4000 प्रतियां 2/09	
11.	तत्व ज्ञान दर्पण	4000 प्रतियां 5/06	4000 प्रतियां 9/07	4000 प्रतियां 2/09	
12.	योग मणि	4000 प्रतियां 6/07	4000 प्रतियां 3/08	4000 प्रतियां 4/09	
13.	कैलेण्डर	1000 प्रतियां 3/04	2000 प्रतियां 10/05	4000 प्रतियां 2/07	4000प्रतियां 7/08
14.	आवागमन	4000 प्रतियां 9/08	4000 प्रतियां 4/09		
15.	Jeewan Mukti	1000 प्रतियां 10/08			
16.	लोक सुखी परलोक सुहेले	4000 प्रतियां 06/09			

ये सभी पुस्तकें हमारी website : www.shwetkamal.in पर भी उपलब्ध है।